अवतारमीमांसा

(अवतार - तत्त्व, अवतार - हेतु, अवतार - प्रयोजन, अवतार -विग्रह, अवतार - कला, अवतार - अलङ्कार, अवतार - आलोक आदि तथ्योंका रस - रहस्यात्मक विवेचन)

रचयिता

पूर्वाम्नाय - गोवर्द्धनमठ - पुरीपीठाधीश्वर

श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य स्वामी निश्चलानन्दसरस्वती

अवतारमीमांसा

(अवतार - तत्त्व, अवतार - हेतु, अवतार - प्रयोजन, अवतार - विग्रह, अवतार - कला, अवतार - अलङ्कार, अवतार - आलोक आदि तथ्योंका रस - रहस्यात्मक विवेचन)

रचयिता

पूर्वाम्नाय - गोवर्द्धनमठ - पुरीपीठाधीश्वर

श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य स्वामी निश्चलानन्दसरस्वती

श्रीहरि:

श्रीगणेशाय नमः

"**स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान**" - श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीका

४५ वाँ पुष्प

अवतारमीमांसा

प्रथम संस्करण वि. स. २०६५ ॐ सन् २००८

१००० प्रतियाँ

सहयोगराशि

५०.०० (पचास रुपय)

卐

स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य
गोवर्द्धनमठ
पुरी १ (उड़ीसा)
७५२००१
दूरभाष (०६७५२) २३१०९४, २३१७१६

श्रीहरि:

श्रीगणेशाय नम:

प्रकाशकीय

"**अवतारमीमांसा**"- पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीपीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्यमहाभाग - विरचित अद्भुत ग्रन्थ है। इसमें सरल, सरस, शास्त्रसम्मत, युक्तियुक्त - शैलीमें अवतारसे सम्बद्ध सामग्रियोंका समावेश दृष्टिगोचर है। इसमें श्रीहरिगुरुकरुणासुलभ अनुपम प्रज्ञाशक्तिकी चमत्कृति सर्वत्र परिलक्षित है। अवतारविग्रहसे सम्बद्ध भक्ति और ज्ञानमार्गिकोंद्वारा उपेक्षित विविध महत्त्वपूर्ण तथ्योंका प्रकाश इसकी अपूर्वता है। इसमें कार्यब्रह्म, कारण ब्रह्म, कार्यकारणातीत परब्रह्मका, एक देव तथा पञ्चदेवका और सौर, वैष्णव, शैव, शाक्त तथा गाणपत्य - प्रस्थानगत पञ्चदेवोंका एवम् उक्त देवोंमें सामञ्जस्यका अनुपम प्रकार सन्निहित है। दार्शनिक धरातलपर अवतारसे सम्बद्ध विषयोंपर समग्र प्रकाश डालनेवाला यह अद्वितीय ग्रन्थ है। पुराणोक्त कथाभागके आधारपर भगवल्लीलाकी रसमयी अभिव्यक्ति करनेवाली विविध संरचना अन्यत्र सुलभ होनेके कारण प्रस्तुत ग्रन्थमें उसका समावेश सूत्ररूपमें ही किया गया है।

पूज्यश्रीके द्वारा संस्थापित पीठपरिषद्के अन्तर्गत "**स्वस्तिप्रकाशनसंस्थान**"- की अध्यक्षा श्रीमती इन्द्रिरा राजगढ़ियाजाकी अद्भुत आस्था और अभिरुचि सर्वतोभावेन सराहनीय है।

मान्य और आत्मीय पाठकोंकी प्रसन्नताके लिए यह जानकारी देना मैं उचित समझता हूँ कि श्रीगोवर्द्धनपीठमें संस्कृत, हिन्दी, इङ्गलिश और उड़िया चार भाषाओंमें ग्रन्थके कम्पोजकी व्यवस्था सुलभ हो गयी है। पूज्यपादने इस परियोजनाका उद्घाटन निज करकमलोंसे ज्येष्ठशुक्ल १४,स०२०६५ (१७ जून, २००८) को किया है। उनकी प्ररणासे ज्येष्ठशुक्ल १५ (स्नानपूर्णिमा), स.२०६५ (१८ जून, २००८) से कार्यारम्भ कर दिया गया है। कालक्रमसे मुद्रणयन्त्र भी पीठमें यथा स्थान प्रतिष्ठित हो, ऐसी भावना है।

प्रस्तुत ग्रन्थका कम्पोज पूज्यपादने स्वयं किया है।

पुस्तक विक्रेताओंकी सुविधाके लिए संस्थानने सन् २००८से प्रकाशित पुस्तकोंपर २० प्रतिशत कमीशन निर्धारित किया है। यह सुविधा ५०० और उससे अधिक रुपयेके एक साथ ग्रन्थ लेनेवाले पाठकोंको भी प्राप्त होगी। गुरुपूर्णिमाके अवसरपर तीन दिनों तक श्रीगोवर्द्धनमठ पुरीमें ५००रुपयेसे कम राशिकी पुस्तक लेनेवाले पाठकोंको भी यह सुविधा सुलभ होगी।

- निवेदक

निर्विकल्पानन्दप्रकाश

३.१४.२०६५(कृष्णादि आषाढकृष्णचतुर्दशी, विक्रम सम्वत् २०६५)

२.७.२००८

पुरी (भारत)

श्रीहरि:

श्रीगणेशाय नम:

विषयानुक्रमणी

✻ श्रीहरिः ✻

श्रीगणेशाय नमः

✡ अवतारमीमांसा ✡

मङ्गलाचरण

''गणेशं प्रमथाधीशं निर्गुणं सगुणं विभुम्।
योगिनो यत्पदं यान्ति तं गौरीनन्दनं भजे।।''
(गणेशपूर्वतापिन्युपनिषत् १)

''नमोऽनन्ताय महते कृष्णायांकुण्ठमेधसे।
योगेशाय च योगाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये।।''
(सामरहस्योपनिषत्)

''यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं यागिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः।।''
(श्रीमद्भागवत १२.१३.१)
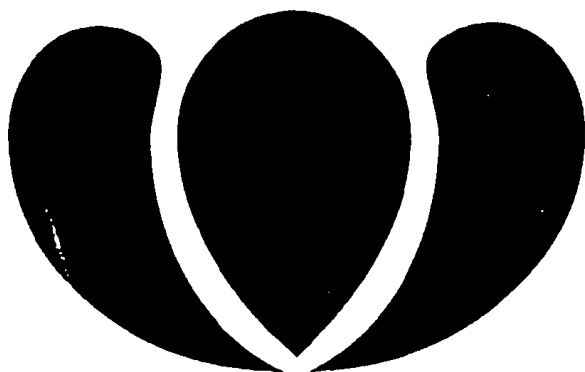
१.अवतारावतरणिका

वैदिक वाङ्मयमें भगवान् का अवतार अद्भुत रस - रहस्य है। वैष्णवादि - प्रस्थानोंमें अवतारके प्रयोजन, महत्त्व और चरितादिका श्रीमद्भागवतादि पुराणोंके आधारपर विस्तारपूर्वक वर्णन है। परन्तु सगुण - निर्गुण, सविशेष - निर्विशेषका तथा शक्ति - शक्तिमान्, निमित्त - उपादानका विभागपूर्वक वर्णन न होनेके कारण अवतारविग्रहका यौक्तिक धरातलपर विवेचन और उत्कर्ष सुलभ नहीं है। निर्विशेषके पक्षधर वेदान्तियोंके ग्रन्थोंमें यद्यपि सगुण - निर्गुण, सविशेष - निर्विशेषका तथा शक्ति - शक्तिमान्, निमित्त - उपादानका विभागपूर्वक वर्णन विस्तारसे सुलभ है, परन्तु अशेष विशेषके प्रति बाध्यबुद्धिके अभिनिवेशके कारण अवतारविग्रहका यौक्तिक धरातलपर विवेचन और उत्कर्ष तथा समुचित समादर सुलभ नहीं है। जब कि श्रीब्रह्मादि, श्रीसनकादि, श्रीशुकादिकी तथा भगवत्पाद श्रीशङ्कर, श्रीनीलकण्ठ, श्रीनरहरि, श्रीमधुसूदन, श्रीतुलसी, श्रीरामदास और

श्रीकरपात्रमहाभागादिकी दृष्टिमें और पुराणादिके परिप्रेक्ष्यमें अवतारतत्त्वका सर्वविध उत्कर्ष सिद्ध है।

जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहृतिमें तथा भगवदवतारकी सिद्धिमें अनिर्वचनीया मायाशक्तिका योग अपेक्षित है। वेदान्तवेद्य मुक्तोपसृप्य केवल सच्चिदानन्दको जगत् और अवतारविग्रहका निमित्त या उपादान अथवा अभिन्न निमित्तोपादान सिद्ध कर पाना असम्भव है। उसे निमित्त और उपादान सिद्ध करनेके लिए स्वीकृत आत्मयोगसंज्ञक स्वात्मवैभवरूपा शक्तिको बन्ध्यापुत्रादि और कूटस्थ ब्रह्मसे विलक्षण अर्थात् अनिर्वचनीय माननेकी बाध्यता है। अन्यथा अद्वैतसिद्धि और सृष्टिसंरचादिकी निष्पत्ति असम्भव है। अचिन्त्य अनिर्वचनीया मायाशक्तिकी स्वीकृतिके अनन्तर सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वेश्वरकी पृथिव्यादि पञ्चभूत तथा स्थावर - जङ्गम - जीवरूपसे अभिव्यक्तिका तथा उससे विलक्षण सूर्यादि पञ्चदेव और श्रीरामकृष्णादि विविधरूपोंमें अभिव्यक्तिका रहस्य हृदयङ्गम करना वेदान्तनयरसिकोंके लिए अपेक्षित है। वैदिक वाङ्मयमें सन्निहित अवतारहेतु , अवतारप्रयोजन , अवतारकला, अवतारालोक, अवतारलीलादिसे सम्बद्ध तथ्योंका प्रकाश प्रस्तुत रचनाका प्रयोजन है।

अवतारतत्त्व अद्भुत रहस्य है। जगद्रचनादिके प्रति भगवान् की अभिन्न निमित्तोपादानताकी स्वीकृतिके बिना केनोपनिषदादिमें निरूपित भगवदवतारका स्वरूप और उत्कर्ष ख्यापित कर पाना असम्भव है।

पुरुषार्थ चतुष्टयकी सिद्धिके लिए हिरण्यगर्भ और वैश्वानररूपसे प्रभुकी अभिव्यक्ति आवश्यक है। पुरुषार्थ चतुष्टयकी सिद्धिके प्रकारके शिक्षणके लिए तथा स्वयंको प्रेमके आश्रय और विषयके रूपमें ख्यापित करनेके लिए प्रभुका साक्षात् अवतार अपेक्षित है।

जीवोंके जन्ममें अविद्या, काम और कर्म हेतु हैं। भगवद्विग्रहकी अभिव्यक्तिमें विद्या, विद्यावैभवरूप स्वेच्छा और लीलाकर्म हेतु हैं। भगवद्विग्रह जीवोंके सप्तधातुमय पाञ्च भौतिक और मलिन सत्त्वप्रधान त्रिविध शरीरोंसे विलक्षण है। वह विशुद्ध सत्त्वनिमित्तक, सन्धिनी - संवित् - ह्लादिनी शक्तिमूलक सच्चिदानन्दात्मक है। तेजोमय सूर्यदेवके श्रीविग्रहमें सन्निहित

अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवके प्रातीतिक विभेद और वास्तविक अभेदके तुल्य भगवद्विग्रहकी दिव्यताका रहस्य हृदयङ्गम करने योग्य है। जलनिष्ठ स्वभावसिद्ध अनागन्तुक शैत्यकी प्रगल्भतासे जलकी हिमरूपताके सदृश ब्रह्मनिष्ठ स्वभावसिद्ध अनागन्तुक सन्धिनी - संवित् - ह्लादिनी शक्तिकी प्रगल्भतासे अवतारविग्रह सम्भव है। सन्धिनी - संवित् - ह्लादिनी शक्तिके तारतम्यसे अवतारकलामें तारतम्य अनुसन्धेय है।

पाटल (गुलाब), पङ्कज (कमल), पनसादि (कटहल आदि) पार्थिव पदार्थोंकी पाञ्चभौतिकता, शब्दादि पञ्च गुणसम्पन्नता, कर्मफलात्मकता, विकारता, स्वल्पता, सविशेषता, मलिनता, परिच्छिन्नता,बाह्यरूपता सिद्ध है;जब कि श्रीरामकृष्णादि अवतारविग्रहकी अपाञ्चभौतिकता, दिव्य शब्दादिगुणसम्पन्नता, कर्मफलविहीनता, निर्विकारता और पूर्णता सिद्ध है। अभिप्राय यह है कि **सविशेष होनेपर भी निर्विकारता और पूर्णता भगवदवतारकी अपूर्वता ह**। त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् के अनुशीलनसे यह रहस्य हृदयङ्गम करने योग्य है।

ध्यान रहे; सम, असङ्ग, अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अरस, अगन्ध, अव्रण परब्रह्मकी अविद्या, काम और कर्मके बिना ही विज्ञानेच्छामूलक अनुरूप अथवा विरूप अभिव्यक्तिकी **दिव्य** संज्ञा है। श्रीकृष्णादिके स्वभावमें समत्व, असङ्गतादिका सन्निवेश स्वरूपानुरूप अभिव्यक्ति है। श्रीकृष्णादिके श्रीविग्रहमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और सप्तधातुका सन्निवेश स्वरूपविरूप अभिव्यक्ति है। दोनोंकी दिव्यता रङ्गमञ्चपर पुरुषका पुरुष या स्त्रीरूपसे, समृद्धका समृद्ध या निर्धनरूपसे, सुन्दरका सुन्दर या असुन्दररूपसे, स्वस्थका स्वस्थ या अस्वस्थरूपसे अवतरणके उदाहरणसे आत्मसात् करने योग्य है।

२.अवतार - तत्त्व

रूपं यत् तत् प्राहुरव्यक्तमाद्यं
ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम्।
सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं
स त्वं साक्षाद् विष्णुरध्यात्मदीपः।।
(श्रीमद्भागवत १०.३.२४)

अव + तृ + घञ् =अवतार, होता है। अवतारका अर्थ अवरोह अथवा उदय है। दार्शनिक धरातलपर निर्गुणका सगुण होना, निराकारका साकार होना, अव्यक्तका व्यक्त होना, अक्रियका सक्रिय होना, एकका अनेक होना, अजका जन्मशील होना, असङ्गका आत्मीय होना, अप्रसिद्धका प्रसिद्ध होना, अप्रमेयका प्रमाणगोचर होना, इन्द्रियातीतका इन्द्रियगोचर होना - **अवतार** है। अभिप्राय यह है कि अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अरस, अगन्ध, अव्यक्त, अक्रिय, अज, असङ्ग, अलक्ष्य - संज्ञक अप्रमेयका प्रमाणगोचर होना अवतारपदार्थ है।

कार्यप्रपञ्च व्यक्त, परिच्छिन्न, प्रकाश्य, सगुण, सविकार, सविशेष और सक्रिय होता है। उसका परमाश्रयरूप मूल व्यक्तादिलक्षणलक्षित समशील वस्तुको स्वीकार करनेपर आत्माश्रयादि दोषोंकी प्रसक्ति सुनिश्चित है। इसके विपरीत कार्यप्रपञ्चका परमाश्रयरूप मूल व्यक्तादिविलक्षण अव्यक्त, अपरिच्छिन्न, स्वप्रकाश, निर्गुण, निर्विकार, निर्विशेष और निष्क्रियको स्वीकार करनेपर वदतोव्याघात दोषकी प्रसक्ति सुनिश्चित है। ऐसी स्थितिमें अव्यक्त, अपरिच्छिन्न, स्वप्रकाश, निर्गुण, निर्विकार, निर्विशेष और निष्क्रियका

मायाशक्तिके द्वारसे व्यक्त, परिच्छिन्न, प्रकाश्य, सगुण, सविकार, सविशेष और सक्रिय कार्यप्रपञ्चके रूपमें स्फूर्ति अर्थात् अभिव्यक्तिकी स्वीकृति अपेक्षित है। युक्तिकी गतिसे अतीतकी सिद्धि ही मायाकी लोकोत्तर चमत्कृति है; जिससे सर्ग, स्थिति, संहृति, बन्ध, मोक्ष और अवतारादिकी सुसङ्गति स्वप्नगत स्वशिरश्छेदनादिवत् सम्भव है -

''एषा माया भगवतः सर्गस्थित्यन्तकारिणी।''

(श्रीमद्भागवत ११.३.१६)

''सेयं भगवतो माया यन्नयेन विरुध्यते।
ईश्वरस्य विमुक्तस्य कार्पण्यमुत बन्धनम्।।
यदर्थेन विनामुष्य पुंस आत्मविपर्ययः।
प्रतीयत उपद्रष्टुः स्वशिरश्छेदनादिकम्।।''

(श्रीमद्भागवत ३.७.९,१०)

यद्यपि अज, अव्यय, सत्, सर्वेश्वरका जन्म, क्षय, नियमन तत्त्वतः असम्भव है, तथापि मायासे सम्भव है। जब कि बन्ध्यापुत्रादि अलीक पदार्थोंका जन्मादि मायासे भी असम्भव है। -

''सतो हि मायया जन्म युज्यते न तु तत्त्वतः।
सत्त्वतो जायते यस्य जातं तस्य हि जायते।।
असतो मायया जन्म तत्त्वतो नैव युज्यते।
बन्ध्यापुत्रो न तत्त्वेन मायया वापि जायते।।''

(माण्डूक्यकारिका ३.२७,२८)

''न तस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते।
आत्ममायां विनेशस्य परमा सृष्टिरात्मना।।''
अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।।

(श्रीमद्भगवद्गीता ४.६)

वेदान्तवेद्य सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मका आत्ममायासे जगत्, जीव, जगदीश्वर - रूपसे अभिव्यञ्जन सम्भव है। **ब्रह्म** निर्गुण - निराकार है। **माया** गुणरूप - निराकार है। काष्ठ और वह्निसंयोगज धूमतुल्य **जगत्**

ब्रह्म और मायाके आध्यासिक संयोगसे निष्पन्न सगुण - निराकार तथा सगुणसाकार है। काष्ठ और वह्निसंयोगज वह्नितुल्य **जीव** ब्रह्म और मायाके आध्यासिक संयोगसे निष्पन्न सगुणनिराकार है। गुणरहित निर्गुण तथा गुणरूप, गुणसमूह या गुणसहित **सगुण** है। कारणनिष्ठ कार्याभिव्यञ्जनसामर्थ्य **गुण** है। रूपसहित **साकार** तथा रूपरहित **निराकार** है। इस प्रकार, साकारकी सगुणता सुनिश्चित है। ब्रह्म अनादि निर्गुण है। माया अनादि गुण है। अनादि निर्गुणकी अव्यय संज्ञा है। अनादि गुणकी अनिर्वाच्य संज्ञा है।

पाटल (गुलाब), पङ्कज (कमल), पनस (कटहल) आदि प्राकृत पदार्थ चरम कार्य हैं। अतएव ये शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धरूप विशेषताओंसे परिपूर्ण हैं। अभिप्राय यह है कि पाटलपङ्कजादि प्राकृत पदार्थ विकार और विशेषताकी पराकाष्ठा हैं तथा कर्मफलात्मक होनेके कारण स्वल्प और नश्वर हैं। वेदान्तवेद्य ब्रह्म निर्विकार, निर्विशेष, परिपूर्ण, प्रकृति तथा प्राकृतसे अतीत अनश्वर है। अतएव मन और इन्द्रियोंका अविषय अर्थात् करणागोचर है।

मनसहित इन्द्रियोंका स्वभाव विषय - प्रवणता है। पाटलादि पार्थिव पदार्थोंके तुल्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धरूप विशेषताओंसे परिपूर्ण और कर्मफलात्मक न होनेसे ब्रह्मतुल्य निर्विकार और पूर्ण कोई अद्भुत पदार्थ मनसहित इन्द्रियोंका स्थिर प्रेमास्पद हो सकता है। **अवतार वह अद्भुत पदार्थ है, जो निर्विकार होता हुआ विशेषताकी पराकाष्ठा है। जो परिपूर्ण तथा अनश्वर है, अतएव इन्द्रियोंके लिये परम आकर्षक तथा आह्लादप्रद है, मनके लिये परम विश्रामप्रद तथा मुक्त मुनीन्द्रोंके लिये भी मृग्य अर्थात् अनुसन्धेय है। कारण स्पष्ट है। सृष्टिसंरचनामें जीवोंके अभुक्त कर्म अवान्तर हेतु हैं, अतः नरक और नारकीय प्राणियोंका सर्जन भी आवश्यक है। कर्मफलार्था सृष्टिकी भौतिकता, स्वल्पता तथा नश्वरता अनिवार्य है। अवतारविग्रहकी स्फूर्ति आत्मार्था सृष्टिके अन्तर्गत है, अतः उसमें प्रभुका स्वातन्त्र्य पूर्णतः चरितार्थ है। लीलापुरुषोत्तमके अवतारमें वह पूर्णतः उच्छलित है।**

३.अवतारक तत्त्व

(अवतार ग्रहण करनेवाला तत्त्व)

वेदान्तप्रस्थानके अनुसार शब्दप्रवृत्तिके हेतुभूत गुण, क्रिया, जाति तथा सम्बन्ध हैं। गुणका आश्रय सगुण, क्रियाका आश्रय सक्रिय, जातिका आश्रय जन्मशील तथा सम्बन्धका आश्रय सम्बन्धशीलको माननेपर आत्माश्रय, अन्योन्याश्रय, चक्रक और अनवस्थारूप दोषचतुष्टयकी प्राप्ति सुनिश्चित है। उक्त दोषोंके वारणके लिये अधिष्ठानात्मक आश्रयतत्त्वको निर्गुण, निष्क्रिय, अज, अद्वय, असङ्ग स्वीकार करना अनिवार्य है। अभिप्राय यह है कि गुण, क्रिया, जाति, सम्बन्धादिको निर्गुण, निष्क्रिय, एक, अज, असङ्ग चिद्धातुमें कल्पित तादात्म्यसम्बन्धसे अवस्थित मानना अनिवार्य है। वेदान्तप्रस्थानके अनुसार उस निरपेक्ष वस्तुका नाम **तत्त्व** है। वह सत्, चित्, आनन्दस्वरूप रसरूप होनेसे सत्यं शिव सुन्दरम् है। वास्तव वस्तुकी तत्त्वसंज्ञा भक्तिज्ञान उभयसम्मत है। श्रीमद्भागवतने शिवरूप वास्तव वस्तुको वेद्य बताया है और उसके बोधसे तापत्रयका उन्मूलन दर्शाया है। - **'वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्'** (**श्रीमद्भागवत १.१.२**)

उसने अद्वय ज्ञानको तत्त्व माना है तथा विवक्षावशात् उसीको ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् भी कहा है। -

''वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।।''
(**श्रीमद्भागवत १.२.११**)

लक्षणसाम्यसे वस्तुसाम्य मान्य है। अतएव नामभेद होनेपर भी वस्तुभेद अमान्य है। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयरूपा त्रिपुटीके मध्यवर्ती ज्ञानको तत्त्व नहीं माना जा सकता। कारण यह है कि उसे आश्रय ज्ञाताकी और विषय ज्ञेयकी अपेक्षा है। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयरूपा त्रिपुटी अन्योन्य (एक - दूसरेके) - सापेक्ष है। वेदान्तप्रस्थानमें अन्योन्यसापेक्ष **दृश्य** मान्य है। अतएव

अधिष्ठानभूत ज्ञानकी तत्त्वरूपता चरितार्थ है। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयरूपा त्रिपुटीका अधिष्ठानभूत ज्ञान ही निरपेक्ष होनेके कारण वास्तव वस्तुरूप - तत्त्व है। उदाहरणार्थ तेजोनिष्ठ गुणविशेष '**रूप**' अधिभूत है। तैजस '**नेत्र**' अध्यात्म है। तैजस '**सूर्य**' अधिदैव है। ये परस्पर सापेक्ष हैं। इनका अधिष्ठानात्मक मूल तेज निरपेक्ष होनेसे तत्त्व है। यह तथ्य श्रीमद्भागवतके अनुशीलनसे इस प्रकार चरितार्थ है। -

"**एकमेकतराभावे यदा नोपलभामहे।**
त्रितयं तत्र यो वेद स आत्मा स्वाश्रयाश्रयः।।"
(श्रीमद्भागवत २.१०.९)

"अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवरूप त्रिपुटीमें एकके बिना शेष दोकी सिद्धि नहीं होती। परस्परसापेक्ष होनेसे अपने अस्तित्वकी सिद्धिके लिये इन्हें जिस स्वप्रकाश वस्तुकी अपेक्षा है, वही आश्रयतत्त्व है। वह किसी अन्यके आश्रित नहीं है, अतएव उसे स्वाश्रय कहा जाता है।।"

"**बुद्धीन्द्रियार्थरूपेण ज्ञानं भाति तदाश्रयम्।**
दृश्यत्वाव्यतिरेकाभ्यामाद्यन्तवदवस्तु यत्।।
दीपश्चक्षुश्च रूपं च ज्योतिषो न पृथग्भवेत्।
एवं धीः खानि मात्राश्च न स्युरन्यतमादृतात्।।
(श्रीमद्भागवत १२.४.२३, २४)

"साधिष्ठान साभास बुद्धि (ज्ञाता), इन्द्रिय (इन्द्रियजन्य ज्ञान) और उनके विषय (ज्ञेय) के रूपमें अधिष्ठानस्वरूप ज्ञान ही भासित हो रहा है। त्रिपुटीकी दृश्यरूपता और ज्ञानस्वरूप आत्मामें अध्यस्तता, अतएव आत्मातिरिक्त असत्ता ही चरितार्थ है। जो आदि और अन्तसे युक्त है, वह अवस्तु अवश्य है।।"

"जैसे दीपक (सूर्य), नेत्र और रूप - ये तीनों तेजसे भिन्न नहीं हैं; वैसे ही साधिष्ठान साभास बुद्धि (ज्ञाता) , इन्द्रिय (इन्द्रियजन्य ज्ञान) और इनके विषय - अधिष्ठानस्वरूप ब्रह्मात्मतत्त्वसे भिन्न नहीं हैं।"

अभिप्राय यह है कि ज्ञेयकी अध्यस्तता ज्ञाता और ज्ञानकी एकरूपता अर्थात् अद्वितीयतामें हेतु है।

उस ज्ञानस्वरूप अद्वय बोधको वेदान्ती ब्रह्म कहते हैं - '**ब्रह्मेति वेदान्तिनः**' (महानाटकम् १.३)। यह तथ्य '**अयमात्मा ब्रह्म**' (माण्डूक्योपनिषत् २), '**प्रज्ञानं ब्रह्म**' (ऐतरेयोपनिषत् ५.४), '**अहं ब्रह्मास्मि**' (**बृहदारण्यकोपनिषत्१.४.१०**), '**अथातो ब्रह्मजिज्ञासा**' (**सीतोपनिषत् २, ब्रह्मसूत्र १.१.१**) अदि वचनोंके अनुशीलनसे सिद्ध है। साङ्ख्य और योगवित् उसे परमात्मा कहते हैं - '**परमात्मेति यं प्राहुः साङ्ख्ययोगविदो जनाः**' (महा०शान्तिपर्व ३४०. २८)। भागवतप्रस्थानमें जीवनिष्ठ हेयगुणगणरहित परिपूर्ण और ज्ञान, शक्ति , बल (सहायसंपत्ति), ऐश्वर्य (ईश्वरत्व,स्वातन्त्र्य), वीर्य (पराक्रम) और तेज (प्रागल्भ्य) आदिसे सदा सम्पन्न परब्रह्मस्वरूप उस तत्त्वको **भगवान्** कहते हैं। -''**प्रियभक्तो हि भगवान् परमात्मा द्विजप्रियः।" (महा० शान्ति० ३४३.५४)**, ''**ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः। भगवच्छब्दवाच्यानि बिना हेयैर्गुणादिभिः**'।।(श्रीविष्णुपुराण ६.५.७९)

विवक्षावशात् पुरुषोत्तमको हरि, नारायण और सर्वभूतनिवासस्थान वासुदेव, क्षेत्रज्ञादि नामोंसे अभिहित किया जाता है।-

''तत्त्वं जिज्ञासमानानां हेतुभिः सर्वतोमुखैः।।
तत्त्वमेको महायोगी हरिर्नारायणो प्रभुः।"
(महा० शान्तिपर्व ३४७. ९०,९० . १/२)

''जो सर्वव्यापक हेतुओंद्वारा तत्त्वको जाननेकी इच्छा रखते हैं, उनके लिये महायोगी हरि, नारायण प्रभु ही एकमात्र ज्ञातव्य तत्त्व हैं।। "

''सर्वावासं वासुदेवं क्षेत्रज्ञं विद्धि तत्त्वतः।।
(महा० शान्तिपर्व ३४४.१८)

''तुम सबके निवासस्थान भगवान् वासुदेवको ही क्षेत्रज्ञ समझो।।"

''क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः पुराणः
साक्षात्स्वयञ्ज्योतिरजः परेशः।
नारायणो भगवान् वासुदेवः
स्वमाययाऽऽत्मन्यवधीयमानः ।।"
(श्रीमद्भागवत ५.११.१३)

"तत्त्वसंज्ञक परमात्मा अपनी मायाके द्वारा जीवोंके हृदयमें रहकर देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणोंका नियामक है। वह क्षेत्रज्ञ, आत्मा, पुरुष (पूर्ण), पुराण (आदिकर्ता, एकरस), साक्षात् स्वयंप्रकाश, अज (अनादि), ब्रह्मादिका भी नियन्ता, नारायण (जीवाश्रय) और वासुदेव है।।"

"तत्त्वतश्च शिवः साक्षाच्चिज्जीवश्च स्वतः सदा।
चिच्चिदाकारतो भिन्ना न भिन्ना चित्त्वहानितः।।"
"चितश्चिन्न चिदाकाराद्भिद्यते जडरूपतः।
भिद्यते चेज्जडो भेदश्चिदेका सर्वदा खलु।।"
(रुद्रहृदयोपनिषत् ४४,४५)

"तत्त्वतः जीव और शिवकी स्वतः सदा साक्षात् चित्स्वरूपता ही सिद्ध है। यदि चित्स्वरूप जीव और चिद्रूप शिवको भिन्न मानें तो दोनोंकी चित्स्वरूपताकी हानि ही हस्तगत होगी।। चित् से जो चित् का भेद कहा जाता है, वह चिदाकारतासे नहीं है, अपितु जडरूप उपाधिके कारण ही है। चित् सर्वदा एक ही होती है।।"

ध्यान रहे, परस्पर पर्यायरूपसे प्रसिद्ध शब्द भी सन्निहित अर्थके अवान्तर वैलक्ष्यण्यके द्योतक होते हैं। उदाहरणार्थ **मधुकर** शब्द मधुकर्त्ताके अर्थमें प्रयुक्त है और **मधुप** शब्द मधुभोक्ताके अर्थमें प्रसिद्ध है। इसी शैलीमें ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् शब्द एकार्थनिष्ठ होते हुए भी एकत्र प्रयुक्त होनेपर अवान्तर वैलक्षण्यके परिचायक होते हैं।

उक्त रीतिसे अद्वय बोध सर्वाधिष्ठान सिद्ध है। सर्वाधिष्ठान होनेसे वह अबाध्य है, अवेद्य है और अपरोक्ष है। अबाध्य होता हुआ अपरोक्ष होनेसे वह **नित्य** है। अवेद्य होता हुआ अपरोक्ष होनेसे वह **स्वप्रकाश** है। नित्यकी सत् - संज्ञा है। स्वप्रकाशकी **चित्** - संज्ञा है। इस प्रकार, अद्वय बोध सत् तथा चित् होनेसे **आत्मा** है। आत्मा परा प्रीतिका विषय है। परप्रेमास्पद आत्मदेव परमानन्दस्वरूप है। इस प्रकार, आत्माकी सच्चिदानन्दरूपता सिद्ध है। लक्षणसाम्यसे वस्तुसाम्यके कारण वेदान्तजगत् में उसकी ब्रह्मरूपता चरितार्थ है।

सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म **निर्गुणनिराकार** है। जिसका अस्तित्व हो, परन्तु जिसकी विशेष उपयोगिता चरितार्थ न हो, वह **निर्गुण** है। जो नीरूप हो, वह **निराकार** है। निर्गुणनिराकार ब्रह्म परमात्मा और भगवान्का

मौलिक स्वरूप है। अचिन्त्य लीलाशक्तिरूपा मायाके योगसे योगिवृन्दवेद्य **सगुणनिराकार ब्रह्म** परमात्मा कहा जाता है। जिसकी विद्यमानता और उपयोगिता दोनों चरितार्थ हो , परन्तु जो नेत्रोंका अविषय हो, वह सगुणनिराकार कहा जाता है। आत्मयोगसम्पन्न परमात्मा भजनीय **सगुणसाकार** भगवान् कहा जाता है। जिसकी सत्ता, उपयोगिता और नेत्रगोचरता - तीनों चरितार्थ हो, वह भक्तोंका भजनीय भगवान् है।

निर्गुणनिराकार ब्रह्मका सगुणनिराकार और सगुणसाकार स्वरूप अवतार है। निर्गुणनिराकार ब्रह्म जल, स्थल और नभमें व्याप्त विद्युत् - तुल्य है। सगुण - निराकार ब्रह्म पंखादि यन्त्रोंके सञ्चालनमें विनियुक्त विद्युत्तुल्य है। सगुणसाकार ब्रह्म बल्व तथा मेघमण्डलके माध्यमसे व्यक्त विद्युत्तुल्य है।

श्रीहरिने स्वयंको **अज** और **अव्ययात्मा** कहकर अपने निर्गुण - निराकार स्वरूपका प्रतिपादन किया है। उन्होंने स्वयंको **भूतोंका ईश्वर** तथा **प्रकृतिका प्रयोक्ता** बताकर अपने सगुण - निराकार स्वरूपका प्रतिपादन किया है। उन्होंने स्वयंका **आत्ममायासे सम्भव** बता कर अपने सगुण - साकार स्वरूपका निरूपण किया है। -

''अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।।''
(श्रीमद्भगवद्गीता ४. ६)

पृथ्वी, जल, तेजकी सगुणसाकारता, वायु और आकाशकी सगुणनिराकारताके तुल्य अथवा प्रेमाश्रुकी सगुणसाकारता और प्रेमकी सगुणनिराकारताके तुल्य यह तथ्य हृदयङ्गम करने योग्य है। अथवा त्वक्, मांस, शोणित,अस्थि, स्नायु, मज्जा और शुक्ररूप सप्त धातुमय स्थूल शरीरकी सगुणसाकारता; कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, प्राण तथा अन्तःकरणरूप सूक्ष्म शरीरकी एवम् अविद्यात्मक कारणदेहकी सगुण - निराकारताके तुल्य और आत्माकी निर्गुण - निराकारताके तुल्य यह तथ्य सिद्ध है। अथवा विश्व - वैश्वानरकी तथा तैजस - हिरण्यगर्भकी सगुण - साकारता, प्राज्ञेश्वरकी सगुण - निराकारता और तुरीयब्रह्मकी निर्गुणनिराकारताके तुल्य यह तथ्य हृदयङ्गम करने योग्य है।

४. अवताररहस्य

जगत् की दृश्यरूपता तथा सावयवता उसे कार्य सिद्ध करती है। कार्यकी उत्पत्ति, स्थिति, और संहृति अनिवार्य है। कार्यात्मक जगत् के उत्पादक, पालक और संहारकरूप निमित्त कारणको सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् मानना भी अनिवार्य है। कार्यात्मक जगत् के उदय, निलय और विलयस्थानरूप उपादानका सर्वव्यापक होना भी सुनिश्चित है। सृष्टिके उपादान और निमित्तको पृथक् मानते ही उपादानकी विभुता, जडता और निमित्तकी परिच्छिन्नता चेतनता तथा उपादानसहित उपादेयरूप जगत् के नियमनमें असमर्थता तथा उपादानके विज्ञानमें कुण्ठाको स्वीकार करनेकी बाध्यता है। जड उपादानको ही निमित्त माननेपर ज्ञान, इच्छा और क्रियाके सार्वभौम सनातन क्रमका उच्छेद अपरिहार्य है। अतएव ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति तथा बहुभवनसामर्थ्यसम्पन्न चेतनको उपादान माननेकी बाध्यता है।

उक्त विधासे सुलभ जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण वेदान्तवेद्य सर्वेश्वर है। उसकी सर्वोपादानताके कारण निराकारता तथा निमित्तकारणताके कारण सगुणता अनिवार्य है। अतः जगत्के अभिन्न निमित्तोपादानकी सगुणनिराकारता चरितार्थ है। साकारका मूल निराकारके तुल्य सगुणका मूल निर्गुण - माननेकी बाध्यता है। जिस प्रकार, आकारके योगसे साकार सिद्ध है, उसी प्रकार गुणयोगसे सगुण सिद्ध है। इस प्रकार, जगत्के निमित्त और अधिष्ठानात्मक उपादानकी निर्गुणनिराकारसंज्ञा चरितार्थ है। वेदान्तप्रस्थानके अनुसार पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशरूप स्थूल और सूक्ष्म पञ्चभूत तथा कार्यकारणसङ्घातरूप स्थावर -जङ्गम प्राणियोंकी **जगत्** संज्ञा है।

अवतारवादके सन्दर्भमें यह ध्यान रखनेकी आवश्यकता है कि

जिन वैशेषिक, नैयायिक, योगी, आर्यसमाजी आदि विचारकोंका ईश्वर जगत्का केवल निमित्तकारण है या केवल मोक्षोपकारक है अथवा ईश्वरातिरिक्त कोई अन्य अभिन्न निमित्तोपादान कारण है ; उनका ईश्वर ज्ञानवान्, इच्छावान् और प्रयत्नवान् होनेके कारण सगुणनिराकार ही हो सकता है, निर्गुणनिराकार या सगुणसाकार नहीं। ईश्वरको निर्गुणनिराकार और सगुणसाकार माननेपर उसे उपादानकारण माननेकी बाध्यता है। यही कारण है कि ईश्वरको केवल निमित्तकारण या मात्र मोक्षोपकारक माननेवाले उसे साकार नहीं मानते अर्थात् ईश्वरका अवतार नहीं मानते। कदाचित् मानते भी हैं तो न्यायनयसम्मत यक्ष, ग्रहादिके आवेशके तुल्य अथवा लोहेमें दाहक, प्रकाशक अग्निके आवेशके तुल्य। अभिप्राय यह है कि **ईश्वरका साक्षात् अवतार अभिन्ननिमित्तोपादानकारणवादका सुनिश्चित सिद्धान्त है।**

इस सन्दर्भमें यह ध्यान देनेकी आवश्यकता है कि उक्त हेतुओंसे दार्शनिक धरातलपर सर्वेश्वरको निर्गुणनिराकार माननेकी बाध्यता है। अतएव सगुणनिराकार प्रथम और सगुणसाकार द्वितीय अवतार सिद्ध होता है। ऐसी स्थितिमें जो ईश्वरवादी ईश्वरको सगुणनिराकार मानते हुए भी ईश्वरका अवतार स्वीकार नहीं करते हैं, वे अवतार स्वीकार करते हुए ही अवतार स्वीकार नहीं करते हैं। कारण यह है कि उन्हें इस रहस्यका पता नहीं है कि **निराकारका साकार होना ही अवतार नहीं है, अपितु निर्गुणका सगुण होना भी अवतार है।** साथही, **जीवनिष्ठ हेय गुणगणोंसे रहित ही निर्गुण नहीं है, बल्कि साम्य और असङ्गादि ग्राह्य तथा स्पृहणीय गुणगणोंसे रहित ही वास्तव निर्गुण है।** कारण यह है कि गुणगण आश्रित हैं तथा निर्गुण आश्रय है; गुणगण शेष हैं तथा निर्गुण शेषी है। अतएव आश्रय तथा शेषी होनेसे निर्गुण निरपेक्ष है। निर्गुण भजनीय है और गुणगण भक्त हैं। निर्गुण मुख्य है और गुणगण गौण हैं। नित्यत्व, ज्ञानत्व, सुखत्व, समत्व, असङ्गत्व,विभुत्व, अविक्रियत्व और अद्वितीयत्वादि गुणगण नित्य, ज्ञान, सुख,सम, असङ्ग, अविक्रिय और अद्वितीय ब्रह्मके अभिव्यक्त अर्थात् औपाधिक संस्थान होनेसे वस्तुतः अगुण होते हुए ही क्षेत्र और दृश्यसंज्ञक गुण हैं। उपाधिविनिर्मुक्त गुणगणकी अगुणता शब्दरहित शब्दज्ञानकी आत्मरूपताके

तुल्य चरितार्थ है। यह तथ्य श्रीमद्भागवतादिके अनुशीलनसे सिद्ध है। -

"मां भजन्ति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकम्।
सुहृदं प्रियमात्मानं साम्यासङ्गादयोऽगुणाः।।"
(श्रीमद्भागवत ११.१३.४०)

"मुझ निर्गुण, निरपेक्ष, सुहृत् , प्रिय आत्माका सर्व गुण भजन करते हैं अर्थात् मुझसे सत्ता और स्फूर्ति लाभ कर मेरा सेवन करते हैं। वस्तुतः समता, असङ्गतादि दिव्यातिदिव्य गुणगण मुझ सम, असङ्ग निर्गुण ब्रह्मके शुद्धसत्त्वके योगसे अभिव्यक्त अनुरूप स्वरूप होनेके कारण निर्गुण हैं।।"

"सुखमस्यात्मनो रूपम्" (श्रीमद्भागवत ७.१३.२६) के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि स्वप्रकाश सुख आत्मा है, न कि भोग्यरूप क्षेत्र। परन्तु आनन्दमयी चित्तवृत्तिके योगसे वह अनुभाव्य क्षेत्ररूपसे स्पन्दित होता है। -

"इच्छा द्वेषः सुखं **दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः।**
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्।।"
(श्रीमद्भगवद्गीता १३.६)

ध्यान रहे, अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवके विशेषज्ञ महानुभावोंसे यह तथ्य तिरोहित नहीं है कि नभोमण्डलमें विद्यमान नेत्रगोचर सूर्यका आधिभौतिक स्वरूप तेजोद्रव्यमात्र है। परन्तु अतीन्द्रिय नेत्रानुग्राहक अधिदैवरूप विग्रहवान् सूर्य सुग्रीव और कर्णके पिता तथा श्रीराम और रघुदिलीपादिके पूर्वज हैं। इसी प्रकार, नभोमण्डलमें विद्यमान नेत्रगोचर चन्द्रमा मनके अनुग्राहक तथा श्रीकृष्णचन्द्रादिके पूर्वज हैं। नेत्रगोचर नगाधिराज हिमालय भगवती उमाके पिता हैं। कलकलनिनादिनी गङ्गा देवव्रत भीष्मकी जननी हैं। औपनिषद प्रस्थानके अनुसार, जगत् चिदाश्रित, चिद्विलास, चिद्विवर्त, चिन्मय और चिन्मात्र सिद्ध होता है। अतएव आधिदैविक - दृष्टिसे पृथ्वी, पानी, प्रकाश, पवनादिकी विग्रहसम्पन्न चेतनता सिद्ध है।

त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् के अनुसार, यदि भगवान् को केवल निराकार ही माना जाय तो आकाशके सदृश उन्हें जड (अचेतन)

माननेकी बाध्यता भी प्राप्त हो। -

''यथा सर्वगतस्य निराकारस्य महावायोश्च तदात्मकस्य त्वक्पतित्वेन प्रसिद्धस्य साकारस्य महावायुदेवस्य चाभेद एव श्रूयते सर्वत्र। यथा पृथिव्यादीनां व्यापकशरीराणां देवविशेषाणां च तद्विलक्षणतदभिन्नव्यापकापरिच्छिन्ना निजमूर्त्याकारदेवता: श्रूयन्ते सर्वत्र तद्वत् परब्रह्मण: सर्वात्मकस्य साकारनिराकारभेदविरोधो नास्त्येव विविधविचित्रानन्तशक्ते: परब्रह्मण: स्वरूपज्ञानेन विरोधो न विद्यते। तदभावे सत्यनन्ताविरोधो विभाति। अथ च रामकृष्णाद्यवतारेष्वद्वैतपरमानन्दलक्षणपरब्रह्मण: परमतत्त्व-परमविभवानुसन्धानं स्वीयत्वेन श्रूयते सर्वत्र । सर्वपरिपूर्णस्याद्वैत-परमानन्दलक्षणपरब्रह्मणस्तु किं वक्तव्यम्। अन्यथा सर्वपरिपूर्णस्य परब्रह्मण: परमार्थत: साकारं विना केवलनिराकारत्वं यद्यभिमतं तर्हि केवलनिराकारस्य गगनस्येव परब्रह्मणोऽपि जडत्वमापद्येत। तस्मात्परब्रह्मण: परमार्थत: साकारनिराकारौ स्वभावसिद्धौ।" (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोयणोपनिषत् २.१)

'' सर्वव्यापी निराकार महावायुका और उसीके स्वरूपभूत त्वक् - इन्द्रियके अधिष्ठातारूपमें प्रसिद्ध साकार महा वायु - देवताका अभेद ही सब कहीं सुना जाता है। पृथिवी आदि व्यापक शरीरवाले देवविशेषोंके व्यापकरूपसे विलक्षण , किन्तु उससे अभिन्न तथा अपरिच्छिन्न होते हुए भी अपनी मूर्तिके आकारके देवता सर्वत्र सुने जाते हैं। अभिप्राय यह है कि जैसे पृथ्वी आदिके अधिष्ठाता देवता अपने पृथिवीरूप शरीर तथा देवशरीर (भगवान् विष्णुकी पत्नी भू देवी) - दोनोंसे युक्त हैं, उसी प्रकार सर्वात्मा भगवान् का साकार और निराकार भेद होनेपर भी विरोध नहीं है। विविध प्रकारकी अनन्त विचित्र शक्तियोंसे सम्पन्न परब्रह्मके स्वरूपका ज्ञान हो जानेपर सकल विरुद्ध धर्माश्रय प्रभुके साकार - निराकार स्वरूपको लेकर कोई विभ्रम उत्पन्न नहीं होता। जब इन्द्रादि दिक्पालों, सूर्यचन्द्रादि अधिदेवों तथा कायव्यूहरचनामें समर्थ महर्षियोंकी ऐसी अद्भुत गाथा है, तव श्रीरामकृष्णादिरूपोंमें अवतीर्ण वेदान्तवेद्य परमानन्दस्वरूप परब्रह्मके

सगुणनिर्गुण उभय स्वरूपको स्वीकार करनेमें आपत्ति ही क्या है ? अन्यथा यदि सर्वपरिपूर्ण परब्रह्मका केवल निराकारस्वरूप ही अभिप्रेत हो, तब केवल निराकार आकाशके तुल्य परब्रह्मको जड माननेकी बाध्यता होगी।।"

यह तथ्य "**देवादिवदपि लोके**" (**ब्रह्मसूत्र २.१.२५**) - के अनुशीलनसे सिद्ध है। इस सूत्रका अर्थ इस प्रकार है - "मन्त्र, अर्थवाद, इतिहास, पुराणादिके अनुसार जैसे देवतादि बिना बाह्य साधनके सङ्कल्पमात्रसे विविध कार्य करते हैं, वैसे ही ब्रह्म अद्वितीय होता हुआ भी जगत् का अभिन्न निमित्तोपादनकारण हो सकता है तथा ब्रह्मा (हिरण्यगर्भात्मक सूर्य), विष्णु, शिव, शक्ति, गणपति आदि विविधरूपोंमें अवतीर्ण हो सकता है। जिस प्रकार, त्रिगुण, महत् , अहम्, तन्मात्र अपने वास्तवरूपमें विद्यमान रहते हुए ही कार्यरूपमें अभिव्यक्त होते हैं, उसी प्रकार ब्रह्म ब्रह्मरूपसे विद्यमान रहते हुए ही विविधरूपोंमें अवतीर्ण होता है।।"

श्रुति भुवनव्याप्त अग्नि और वायुकी प्रतिरूपताका निरूपणकर इस रहस्यका उद्घाटन करती है। -

"अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।
वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।"

(कठोपनिषत् २.२.९,१०)

महाभाष्यके अनुसार इन्द्रादिमें युगपत् बहुभवनसामर्थ्य -सम्पन्नता मान्य है। - "**एक इन्द्रोऽनेकस्मिन् क्रतुशते आहूतो युगपत् सर्वत्र भवति।**" (**१.२.६४**) _ "एक इन्द्र सैकड़ों यज्ञोंमें बुलाये जाने पर एक साथ सब यज्ञोंमें पहुँच कर भोक्ता होता है।"

५. अवतारोपपत्ति

(अवतारसन्दर्भमें सम्यक् - युक्ति)

गौमें दुग्ध निराकाररूपसे सन्निहित होता है। भावना और वत्सयोगसे उसकी साकाररूपसे अभिव्यक्ति होती है। दुग्धमें दधि, दधिमें नवनीत, नवनीतमें घृत, घृतमें मण्ड निराकाररूपसे सन्निहित होता है। युक्त उपायोंसे अनिर्वचनीय रीतिसे दधि आदिका प्राकट्य होता है। बीजमें सन्निहित अङ्कुर,नाल, काण्ड, शाखा, प्रशाखा, पल्लव, पुष्प, फल - कालक्रमसे साकार होते हैं। निराकार वायुका साकार अग्निरूपसे अवतरण सर्वविदित है। निराकार प्रेमका शीतल अश्रुरूपसे स्फुरण सर्वविदित है।

उक्त दृष्टान्तोंके बलपर, निराकारकी अनिर्वचनीय साकाररूपता चरितार्थ है।

सुनिश्चित कारणसे सुनिश्चित कार्यकी सिद्धि असत्कार्यवादकी असिद्धि है। कारणदशामें कार्यकी अभिव्यक्तिका अभाव अर्थात् अनभिव्यक्तिकी अभिव्यक्ति सत्कार्यवादकी असिद्धि है। सदसत्की असङ्गतता भी पारिशेष्यन्यायसे सिद्ध ही है।

अग्निकी दाहकता और प्रकाशकता सर्वमान्य है। काष्ठगत अग्निमें दाह और प्रकाशका अदर्शन भी सर्वमान्य है। ऐसी स्थितिमें साकार वह्निमें दाह तथा प्रकाशका स्फुरण साकारकी सत्ता, आवश्यकता और महत्ताको चरितार्थ करनेमें पर्याप्त है।

अङ्कुरादि -उत्पादिनी शक्तिसम्पन्न सामग्रीका नाम **बीज** है। वट, प्लक्ष, अश्वत्थ, आम , अनार, कचनार , गुलाब, चम्पा, चमेली, जूही, बेला आदिके बीजमें कार्यभेदसे परस्पर विलक्षण शक्तियोंका अनुमान स्वाभाविक है। बीजनिष्ठ कण्टक, पत्रादिकी अपेक्षा पुष्प, फलादिको समुत्पन्न करनेवाली शक्तिकी विलक्षणता फलबलकल्प्य और हठात् मान्य है। ऐन्द्रजालिकमें अन्य व्यक्ति और वस्तुओंको ही नहीं, अपितु स्वयंको

भी रचनेकी विलक्षण शक्ति सन्निहित होती है, तद्वत् परमेश्वरमें जगत् और जीवरूपसे स्वयंको अभिव्यक्त करनेवाली विलक्षण शक्ति सन्निहित है।

जिस प्रकार, जल स्वनिष्ठ स्वाभाविक शैत्यकी प्रगल्भतासे हिम, उपलरूपसे विलसित होता है, उसी प्रकार परब्रह्म स्वनिष्ठ सन्धिनी, संवित् तथा ह्लादिनी शक्तिके अमोघ प्रभावसे अथवा स्वशक्तिगत सत्त्वकी प्रगल्भतासे सत्प्रधान मत्स्य, कूर्मादि, चित्प्रधान श्रीरामादि और आनन्दप्रधान कृष्णादि रूपोंमें अवतीर्ण होता है।

''...तस्य संज्ञादिविशेषप्रतिपत्तिरागमतः पर्य्यन्वेष्या। तस्य आत्मानुग्रहाभावेऽपि भूतानुग्रहः प्रयोजनम्। ज्ञानधर्मोपदेशेन कल्पप्रलयमहाप्रलयेषु संसारिणः पुरुषानुद्धरिष्यामीति। तथा चोक्तम् ''आदिविद्वान्निर्माणचित्तमधिष्ठाय कारुण्याद्भगवान् परमर्षिरासुरये जिज्ञासमानाय तन्त्रं प्रोवाच" - योगदर्शन समाधिपादके २५वें सूत्रका यह व्यासभाष्य है। इसके अनुसार, ईश्वरके नाम आदि विशेषोंका ज्ञान आगमप्रमाणसे प्राप्त करना चाहिये। उसका अपना कोई प्रयोजन न होनेपर भी ''कल्प, प्रलय तथा महाप्रलयरूप सृष्टिचक्रमें आबद्ध प्राणियोंका अध्यात्म और धर्मविषयक अपने अलुप्त बोधका उपदेशद्वारा समुद्धार करूँ" इस प्रकारका अनुग्रह ही उसका प्रयोजन है। वैसे ही कहा भी गया है कि - ''आदिविद्वान् भगवान् परमर्षि (कपिल) ने जिज्ञासु आसुरिको करुणाके कारण योगनिर्मित शरीर धारण करके साङ्ख्यशास्त्रका उपदेश दिया था (-पञ्चशिखाचार्य)।।"

वार्तिककार श्रीविज्ञानभिक्षुमहाभागके अनुसार -

''......संज्ञा ब्रह्मान्तर्यामिपरमात्मादिरूपा आदिशब्देन पूर्णानन्दत्वपरमकारुणिकत्व पारमार्थिकत्वजगदाधारकारणत्वादयो ग्राह्याः। हरिहरादिसंज्ञामूर्तयस्तु शक्तिशक्तिमदाद्यभेदेनोपासनार्थमेव परमेश्वरस्योच्यन्ते न तु साक्षादेव। -

ब्रह्मविष्णुशिवा ब्रह्मन्प्रधाना ब्रह्मशक्तयः।
ततश्च देवा मैत्रेय न्यूना दक्षादयस्ततस्ततः।।

ततो मनुष्याः पशवो मृगपक्षिसरीसृपाः।
न्यूनान्न्यूनतराश्चैव वृक्षगुल्मादयस्तथा।।
(श्रीविष्णुपुराण १.२२.५८,५९)

इत्यादिवाक्येभ्यः। आगमतो वेदान्ततः। यत्तु आधुनिकाः केचन परस्य साक्षादपि लीलाविग्रहं कल्पयन्ति, तदप्रामाणिकम्। विष्ण्वादीनामेव लीलावतारश्रवणात्। विष्ण्वादीनाञ्च परमात्मन्येवाहम्भावात्तेषामवतारा एव परमेश्वरावतारतया श्रुतिस्मृतिषु उच्यन्ते। तेन तु ते भ्रान्ताः।

"न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते।" - (श्वेताश्वतरोपनिषत् ६.८) इत्यादि श्रुतिभ्यः परमेश्वरस्य कार्य्यकारणाख्य-शरीरद्वयप्रतिषेधात्। अनादिमत्परं ब्रह्म सर्वदेहविवर्जितम्' इत्यादिस्मृतिभ्यश्चेति दिक्। .."

श्रीविज्ञानभिक्षुका यह कथन कि "साक्षात् केवल परमेश्वरके लीलाविग्रहकी कल्पना आधुनिकोंकी है", श्रुतिस्मृतिसम्मत न होनेसे प्रौढिवाद है, न कि वास्तविक। योगप्रस्थानमें ईश्वरका अवतार अमान्य है। इसके अनुसार श्रीहरि, हर, ब्रह्मा, कपिलादि महेश्वरसे बोधप्राप्त तादात्म्यापन्न मान्य हैं।

ईश्वरको सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् मानते हुए भी करणरहित मानना असङ्गत है। **"न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते।"- (श्वेताश्वतरोपनिषत् ६.८)** इत्यादिवचन सर्वतोभावेन निर्गुण - निराकारपरक हैं। मायावृत्तिरूप मनके बिना ईश्वरको सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् सिद्ध करना भी असम्भव ही है।

"तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः"
(श्रीमद्भागवत १.१.१)

मायायोगसे परमात्माकी मायी संज्ञा चरितार्थ है। वह करणाभिव्यञ्जक अधिभूत और करणात्मक अध्यात्मसहित ब्रह्मादि अधिदैववर्गका भी धारक होनेसे करणाधिपाधिप है। मायावृत्तिरूप ईशसंकल्प और मनोवृत्तिरूप जीवसंकल्पके कारण ही जगत् की मायामयता और मनोमयता मान्य है।-

"मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।"

(श्वेताश्वतरोपनिषत् ४.१०)

''स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य
कश्चिज्जनिता न चाधिपः।।''

(श्वेताश्वतरोपनिषत् ६.९)

''प्रवर्तकत्वं चाप्यस्य मायया न स्वभावतः'' (पाशुपतब्रह्मोपनिषत् १०),

''विद्धि मायामनोमयम्''(श्रीमद्भागवत ११.७.७)

''मायावृत्त्यात्मको ह्रीशसङ्कल्पः साधनं जनौ।
मनोवृत्त्यात्मको जीवसङ्कल्पो भोगसाधनम्।।''

(पञ्चदशी .४.१९)

केनोपनिषत् में ब्रह्मका अग्नि, वायु और इन्द्रादि देवोंके सम्मुख यक्षरूपसे अवतार श्रुत है। स्वयं ब्रह्मविद्यास्वरूपा बहुशोभमाना उमाने इस रहस्यका प्रतिपादन इन्द्रके प्रति डण्केकी चोटसे किया है। -

''सा ब्रह्मेति होवाच, ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वम्''

(केनोपनिषत् ४.२६.१)

कैवल्योपनिषत् में चिदानन्दस्वरूप सर्वसाक्षी परमेश्वरका उमापति, त्रिलोचन और नीलकण्ठरूपसे प्रतिपादन केवल ब्रह्मके अहङ्ग्रहोपासक शिवका निरूपण नहीं माना जा सकता तथा कार्यकरणरहित ब्रह्मकी अहङ्ग्रहोपासनासे अहङ्ग्रादिका निरोध ही सम्भव है, न कि अवतारादिका सामर्थ्य। -

''तमादिमध्यान्तविहीनमेकं विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम्।
उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात्।।''

(कैवल्योपनिषत् १.७,)

छान्दोग्योपनिषत् में जो पृथ्वी, द्यु - आदि लोकोंका नियामक तथा धारक और पापादि दोषोंसे नित्य पारङ्गत है, उस आदित्यमण्डलान्तर्गत परमात्माके नखपर्यन्त सुवर्णसदृश केशादिका वर्णन है। -

''य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः''

(छान्दोग्योपनिषत् १.६.६)

ध्यान रहे, योगियोंका ईश्वर औपनिषद तत्पदके वाच्यार्थ कोटिका पदार्थ है, अतएव वह ब्रह्मकी प्रधान शक्ति है। ऐसी स्थितिमें उसके मूर्तरूप ब्रह्मा, विष्णु और शिवको ब्रह्मकी प्रधानशक्ति कहना दूषण नहीं, अपितु भूषण है। वस्तुतः -

''सर्वशक्तिमयो विष्णुः स्वरूपः ब्रह्मणः परम्।
मूर्त्तं यद्योगिभिः पूर्वं योगारम्भेषु चिन्त्यते।।''
(श्रीविष्णुपुराण १.२२.२८)

''सर्वशक्तिमय विष्णु ही ब्रह्मके परस्वरूप तथा मूर्त्त -रूप हैं, जिनका योगिजन योगारम्भके पूर्व चिन्तन करते हैं।।''

''निर्गुणनिराकार विष्णुस्वरूप ब्रह्म ही साक्षात् श्रीकृष्णरूपमें अवतीर्ण है '' - यह तथ्य श्रीमद्भागवतादिके अनुशीलनसे सिद्ध है। -

''रूपं यत् तत् प्राहुरव्यक्तमाद्यं
ब्रह्मज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम्।
सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं
स त्वं साक्षाद् विष्णुरध्यात्मदीपः।।''
(श्रीमद्भागवत १०.३.२४)

''प्रभो, आप एकमात्र वेदप्रमाणसे ही निरूपित - लक्षित या प्रकाशित होते हैं, न कि प्रत्यक्षानुमानादि किसी अन्य प्रमाणसे। आप स्वरूपतः **अव्यक्त** हैं, अतः किसी हेतुसे आपकी अभिव्यक्ति असम्भव है। आप **आद्य** अर्थात् सर्वकारण हैं, अतः आपकी अभिव्यक्ति सम्भव नहीं। आप **व्यापक** हैं, अतः किसी देशविशेषमें आपकी अभिव्यक्ति सम्भव नहीं। आप **ज्योतिःस्वरूप** - स्वप्रकाश हैं, अतःदीपादि अधिभूत, नेत्रादि अध्यात्म, सूर्यादि अधिदैवरूप ज्योतियोंसे आपका प्रकाश सम्भव नहीं। अभिप्राय यह है कि स्वप्रकाश और सर्वावभासक होनेसे आपकी दृष्टिगोचरता संभव नहीं। आप **निर्गुण** हैं, अतः किसी गुणसे भी आपका अभिव्यञ्जन सम्भव नहीं। आप **निर्विकार** हैं, अतः कार्यरूपसे भी आपका अवतरण सम्भव नहीं। आप **सत्तामात्र** हैं, अतः ' सन् घटः ', 'सन् पटः' आदि स्थलोंमें सत्

ही घट, पटका अभिव्यञ्जक है , न कि घटादि सत् के अभिव्यञ्जक हैं, ऐसी स्थितिमें आपका अभिव्यञ्जक कोई नहीं, कारण यह है कि आपके अतिरिक्तका वास्तव अस्तित्व ही नहीं। आप **निर्विशेष** अर्थात् निरवयव हैं। घटत्वादि सामान्यसे घटादि विशेषकी अभिव्यक्तिके तुल्य भी आपकी अभिव्यक्ति सम्भव नहीं। आप **निरीह** अर्थात् आकाशादिके तुल्य निष्क्रिय हैं, अतएव कपाटादि उद्घाटनके तुल्य क्रियाकलापसे भी आपका अभिव्यञ्जन सम्भव नहीं। हे अनुग्रहविग्रह प्रभो! आप आत्ममायासे ही इस अद्भुत बालविष्णुरूपसे हम दोनोंके दृष्टिगोचर हो रहे हैं। आप **नेति, नेति (बृहदारण्यक २.३.६)** आदि "**न त्वममनुष्यः**" - "तू अमनुष्य नहीं है" के तुल्य विधिगर्भित निषेध मुखसे तथा **सत्यम्, ज्ञानम्** , आदि निषेधगर्भित विधिमुखसे वेदैकसमधिगम्य होनेसे अव्यक्त हैं। आप परमाणु और प्रधानपरिभिन्न ज्योतिःस्वरूप ब्रह्मरूप आद्य कारण हैं। आप ज्ञानगुणयुक्त या ज्ञानपरिणामसंप्राप्त या मायानिष्ठ विक्षेपशक्तिसंप्राप्त परिणामी तथा तारतम्ययुक्त आत्मस्वरूप ब्रह्म नहीं, अपितु निर्गुण, निर्विकार, सत्तामात्र -एकरस निर्विशेष ब्रह्मस्वरूप हैं। आप चुम्बकाश्मवत् निरीह - निष्क्रिय होते हुए ही सन्निधिमात्रसे जगत्कारण हैं।।"

उक्त रीतिसे निर्गुण ब्रह्मकी मायायोगसे जगत्कारणता और लीलायोगसे श्रीकृष्णादिरूपसे अवताररूपता सिद्ध है। अव्यक्त, आद्य, विभु,स्वयञ्ज्योति, निर्गुण, निर्विकार,सत्तामात्र, निर्विशेष निरीहकी एकरूपता है। व्यक्त, कार्य, परिच्छिन्न,भास्य, सगुण, सविकार, अनित्य, सविशेष और सचेष्टकी एकरूपता है। अव्यक्तादिकी तत्त्वरूपता सिद्ध है और अवताररूपता असिद्ध। व्यक्तादिकी तत्त्वरूपता असिद्ध है और अवताररूपता सिद्ध। व्यक्तादिके मूलमें व्यक्तादिकी मान्यता अनर्गल है, अतः व्यक्तादिका कारण अव्यक्तादिको मानना अनिवार्य है। व्यक्तादिकी संज्ञा **जगत्** है। व्यक्तादिमें समासक्तकी संज्ञा **जीव** है। जीव, जगत् के नियामककी संज्ञा **जगदीश्वर** है। जीव, जगत् और जगदीश्वरके मौलिक रूपकी संज्ञा अव्यक्तादिसंज्ञक तत्त्व है। अव्यक्तादिसंज्ञक तुरीय - कूटस्थ ब्रह्मतत्त्व बीजोपादान मृत्तिका तुल्य है। प्राज्ञेश्वर बीजतुल्य हैं। तैजस - हिरण्यगर्भ अङ्कुरतुल्य हैं। विश्व - वैश्वानर शाखा - प्रशाखापुष्पतुल्य हैं। श्रीराम,

कृष्ण तथा शिवादि फलसदृश हैं। फलमें बीज और बीजोपादान सन्निहित होता है और फल अङ्कुरादिसे विलक्षण तथा रसिकोंका आकर्षण केन्द्र और भावुकोंका भोग्य होता है, तद्वत् अवतारविग्रहमें कारण ब्रह्म और कारणातीत परब्रह्म सन्निहित होता है और वह प्राज्ञेश्वरादिसे विलक्षण रसिकोंका आकर्षण केन्द्र और भावुक भक्तोंका भोग्य होता है तथा मुक्त मुनीन्द्रोंका मृग्य एवम् अविद्या, काम और कर्मसे असंस्पृष्ट निरावरण ब्रह्म होता है। कहा भी है -

''मुक्तमुनीनां मृग्यं किमपि फलं देवकी फलति।
तत्पालयति यशोदा निकाममुपभुञ्जते गोप्यः।।''

''मुक्त मुनियोंके मृग्य (अनुसन्धेय) किसी अद्भुत फलको देवकी फलती है। उसका पालन देवकी करती है। परन्तु उसका यथेच्छ उपभोग तो रासलीलादिमें सन्निहित गोपियाँ ही कर पाती हैं।।''

अवतारका उत्कर्ष उक्त रीतिसे चरितार्थ है।

यद्यपि अव्यक्त, आद्य, विभु,स्वयञ्ज्योति, निर्गुण, निर्विकार,सत्तामात्र, निर्विशेष निरीहका अवतार असम्भव है; तथापि असम्भवको सम्भव करना ही मायाकी चमत्कृति और लीलाशक्तिकी अभिव्यक्ति ह। -

''सेयं भगवतो माया यन्नयेन विरुध्यते।''
(श्रीमद्भागवत ३.७.९)

''इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते ...... तदेतद्ब्रह्मापूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यमयमात्माब्रह्म सर्वानु-भूरित्यनुशासनम्।।''(ऋग्वेद ६.४७.१८. बृहदारण्यकोपनिषत् २.५.१९) - ''समस्त वेदोंका यह तात्पर्यभूत उपदेश है कि वह यह ब्रह्म जो कार्यकारणरहित बाह्याभ्यन्तरभेदशून्य सर्वद्रष्टा प्रत्यगात्मस्वरूप इन्द्रसंज्ञक महेश्वर है, मायावृत्तियोंके योगसे विविधरूप धारण करता है।''

''प्रजापतिश्चरति गर्भेरन्तरजायमानो बहुधा विजायते''

(यजु :संहिता ३१. १९) - ''सर्वपालक सर्वेश्वर गर्भमें विचरण करता है। वह अज होता हुआ भी विविधरूपोंमें समुत्पन्न होता है।।", **''इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पांसुरे स्वाहा "** **(यजुर्वेद ५.१५)** -'' वामनरूप भगवान् विष्णुने इस प्रतीयमान विश्वका तीन प्रकारसे पादविन्यास कर इसे आक्रान्त किया है। इनके धूलियुक्त पादस्थानमें सम्पूर्ण विश्व अन्तर्भूत है।।"

उक्त वचनोंसे भी परमात्माके अवतारकी सिद्धि होती है। साथ ही अग्नि और वायुतुल्य उसकी विभुता तथा उपाधियोगसे प्रतिरूपता सिद्ध है एवम् नेत्रानुग्राहक सूर्यतुल्य स्थावर - जङ्गमका उद्भासक होता हुआ भी भास्यसंसर्गसे अलिप्तता चरितार्थ है। यह तथ्य **कठोपनिषत**के **''अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। .." (२.२.९), ''वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।..." (२.२.१०),''सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः।.. "(२.२.११)** के अनुशीलनसे सिद्ध है।

६.अवतारविग्रह

वेदान्तवेद्य परब्रह्म सच्चिदानन्दस्वरूप है। जब मन भी मन और वाणीसे अतीत है, तब सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मकी अकरणगोचरता कैमुतिकन्यायसे स्वतःसिद्ध है। वेदान्तवेद्य अज, अनादि, लोकमहेश्वर परमात्माकी विष्णु, शिव, श्रीरामकृष्णादिरूपोंमें स्फूर्तिमें आत्ममाया हेतु है।-

''अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।।''
(श्रीमद्भगवद्गीता ४. ६)

''कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया।।''
(श्रीमद्भागवत १०. १४.५५)

अब **प्रश्न** उठता है कि पञ्चीकृत पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु व्यक्त हैं। इनकी विशेष अर्थक्रियाकारितारूपा महत्ताके साथ - साथ इनकी अनित्यता भी चरितार्थ है। अवतारविग्रह भी व्यक्त है। ऐसी स्थितिमें उसकी महत्ताके साथ - साथ अनित्यता भी स्वीकार करनेकी बाध्यता है।

उत्तर है - **''कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः'' (शुकरहस्योपनिषत् १२)** के अनुसार ईश्वर मायोपाधिक चिद्धातु हैं। अतएव सर्वज्ञ और निमेष, उन्मेष, सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान तथा अनुग्रहादि सर्वशक्तिसामर्थ्य होनेसे साक्षात् सर्वशक्तिमान् हैं। वे सङ्कल्पमात्रसे आविर्भाव, प्रादुर्भाव और तिरोभावसमर्थ हैं। महाप्रलयमें महेश्वर स्वशक्तिभूता महामायाको स्वात्मभावापन्नकर स्थित होते हैं। गुणक्षोभके अनन्तर त्रिगुणमयी महामायाके विशुद्ध सत्त्वात्मक स्वरूपसे तादात्म्यापन्न होकर उत्पत्ति, स्थिति, संहृति, निग्रह और अनुग्रह -नामक कृत्यके सम्पादनके लिये क्रमशः हिरण्यगर्भात्मक सूर्यसंज्ञक ब्रह्मा तथा विष्णु, शिव, शक्ति और गणेशरूपस स्फुरित होते हैं।

उत्पत्ति,स्थिति, संहृति - नामक तीन कृत्य जगत् की प्रधानतासे हैं और निग्रह तथा अनुग्रह नामक - दो कृत्य जीवोंकी प्रधानतासे हैं। जिस प्रकार विशुद्ध सत्त्व गुणक्षोभके अनन्तरकी दशा होनेपर भी तत्त्वान्तर परिणाम न होनेसे कार्य नहीं है तथा उससे उपहित ईक्षणकर्त्ता चेतन भी कार्योपाधिक जीव न होकर कारणोपाधिक ईश्वर ही है; उसी प्रकार उत्पत्तिकी प्रधानतासे ब्रह्मा, स्थितिकी प्रधानतासे विष्णु, संहृतिकी प्रधानतासे शिव, निग्रहकी प्रधानतासे शक्ति और अनुग्रहकी प्रधानतासे गणेश एवम् इनके विविध अवतार भी साधनसिद्ध जीवके अवतार न होकर, नित्यसिद्ध सर्वेश्वरके ही अवतार हैं। इस दृष्टिसे यद्यपि ये पञ्चदेव तत्त्वान्तर परिणामरूप कार्य सिद्ध नहीं होते, तथापि प्रपञ्चोपादान पृथ्वीसे महत्पर्यन्त और त्रिगुणकी साम्यावस्थापन्नताके पूर्वतक, अमृत सिद्ध होते हैं।

ब्रह्मलोककी गणनाके अनुसार शतायु और मर्त्यलोककी गणनाके अनुसार **३१ नील,१०खरब,४०अरब** वर्षकी आयुवाले श्रीब्रह्माजीकी सुषुप्ति प्रलय है तथा विदेहस्थिति महाप्रलय है। यह कार्यब्रह्मकी आयु है। महदात्मक पद्मसमुद्भूत अहमात्मक श्रीब्रह्माजीकी विलयस्थिति कारणब्रह्म श्रीहरिकी सुषुप्तितुल्य है। वह प्रकृतिकी साम्यावस्था है। उससे उपहित कारण ब्रह्मरूप श्रीविष्णुके प्रति उस दशामें भी विशुद्ध सत्त्वकी स्फूर्ति उसी प्रकार सम्भव है, जिस प्रकार सिकता और शर्कराके सम्मिश्रणकी दशामें भी अति सूक्ष्म पिपीलिकाके प्रति शर्कराकी स्फूर्ति। वही परमात्माका अवतारी स्वरूप है। उसकी कार्योपाधिविनिर्मुक्तता, नित्यता और चिन्मयता भी चरितार्थ है। अभिप्राय यह है कि मलिन सत्त्वात्मिका अविद्यारूप उपाधिके योगसे ब्रह्मकी जीव संज्ञा है। कामकर्मप्रसूत तमःप्रधाना प्रकृतिके कार्यरूप पञ्चभूतात्मक सावयव - साकार स्थूलशरीरमें अभिनिवेश होनेसे जीव साकार मान्य है। जीवोंके अविद्या, काम, कर्मफलात्मक पञ्चभूतप्रसूत साकार शरीर सावयव और अनित्य सिद्ध हैं। विशुद्ध सत्त्वात्मिका विद्यारूप उपाधिके योगसे ब्रह्मकी सर्वेश्वर संज्ञा है। लीलाकर्मप्रसूत विशुद्ध सत्त्वसमुद्भूत श्रीविग्रहसम्पन्न होनेसे सर्वेश्वरका अवतारविग्रह साकार होता हुआ भी निरयव होनेसे

नित्य होता है -"**समस्ताविद्योपाधिः साकारः सावयव एव। सावयवत्वादवश्यमनित्यं भवत्येव। .... अद्वैताखण्डपरिपूर्ण-निरतिशयपरमानन्दशुद्धबुद्धमुक्तसत्यात्मकब्रह्मचैतन्य-साकारत्वान्निरुपाधिकसाकारस्य नित्यत्वं सिद्धमेव।।**" **(त्रिपाद्विभूतिमहानारायणेपनिषत् २.१)**

ध्यान रहे, विशुद्ध सत्त्वके योगसे ब्रह्ममें सर्वज्ञता सिद्ध है। अतः विशुद्ध सत्त्वके योगसे सर्वेश्वर जगत्का निमित्त कारण है। तमःप्रधाना प्रकृतिके योगसे बहुभवनसामर्थ्यसम्पन्न सर्वेश्वर जीवोंके सूक्ष्म और स्थूल शरीरका तथा सूक्ष्म और स्थूल जगत्का उपादान कारण है। अभिप्राय यह है कि विशुद्ध सत्त्वके योगसे ब्रह्ममें ज्ञानशक्ति, रजोयोगसे इच्छाशक्ति तथा क्रियाशक्ति एवम् तमोयोगसे बहुभवनसामर्थ्यसम्भव है। गुणविमर्दन्यायसे विशुद्धसत्त्वसमुद्भूत सर्वज्ञता, करुणा, मुदिता, समतादिकी अभिव्यक्तिमें रजोगुणका तथा इन भावोंके स्थैर्यमें तमोगुणका विनियोग है। इस प्रकार, आकाशादि पञ्चभूत और प्राणियोंके स्थावर - जङ्गम शरीरोंकी अभिव्यक्तिमें विशुद्ध सत्त्व निमित्त तथा तमोगुण उपादान है। जब कि भगवद्विग्रहकी अभिव्यक्तिमें विशुद्ध सत्त्व निमित्त और उपादान दोनों हेतु है। अथवा भगवद्विग्रहकी अभिव्यक्तिमें विशुद्ध सत्त्व निमित्त और सच्चिदानन्दतत्त्व ही साक्षात् उपादान है। जिस प्रकार, हिमका उपादान जल है और निमित्त जलनिष्ठ शैत्यकी प्रगल्भता, उसी प्रकार अवतार- विग्रहका उपादान सच्चिदानन्द है और निमित्त स्वशक्तिभूता सत्त्वकी प्रगल्भता। अथवा जिस प्रकार, सौरालोकमण्डित दर्पणमें प्रतिफलित आदित्यका दर्पण अभिव्यञ्जक संस्थान है, निमित्त नभोमण्डलमें स्थित आदित्य है और उपादान सूर्यका आलोक, वैसे ही भगवद्विग्रहका अभिव्यञ्जक संस्थान चिदाभासमण्डित विशुद्ध सत्त्व है, उपादान चिदाभास है और निमित्त चिदाकाश। इस प्रकार,भगवद्विग्रहका निमित्तोपादान चिद्धातु ही सिद्ध है। विशुद्ध सत्त्वके योगसे अनन्त एकरस सच्चिदानन्दमय करपादमुखोदरादि अवतारविग्रहका अद्भुत माहात्म्य उपनिषद्दर्शियोंके लिये भी अगम्य है। -

''सत्यज्ञानानन्तानन्दमात्रैकरसमूर्त्तय: ।
अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषद्दृशाम् ।।''
(श्रीमद्भागवत १०.१३,४५)

भगवत्पाद शिवावतार श्रीशङ्कराचार्य महाभागके अनुसार-

''ब्रह्माण्डानि बहूनि पङ्कजभवान्प्रत्यण्डमत्यद्भुतान्
गोपान् वत्सयुतानदर्शयदजं विष्णूनशेषांश्च य: ।
शम्भुर्यच्चरणोदकं स्वशिरसा धत्ते च मूर्तित्रयात्
कृष्णो वै पृथगस्ति कोऽप्यविकृत: सच्चिन्मयो नालिमा ।।''
(प्रबोधसुधाकर २४२)

''जिन्होंने ब्रह्माजीको अनेक ब्रह्माण्ड, प्रत्येक ब्रह्माण्डमें अति अद्भुत ब्रह्मा, वत्सोंसहित समस्त गोपों तथा भिन्न - भिन्न ब्रह्माण्डोंके विष्णु दिखाये, जिनके चरणोदकको शङ्कर अपने शिरपर धारण करते हैं, वे श्रीकृष्ण त्रिमूर्ति ब्रह्मा, विष्णु और महेशसे भिन्न कोई सच्चिदानन्दमयी विकाररहित नीलिमा हैं।। ''

''भूतेष्वन्तर्यामी ज्ञानमय: सच्चिदानन्द: ।
प्रकृते: पर: परात्मा यदुकुलतिलक: स एवायम् ।।''
(प्रबोधसुधाकर १९५)

'' जो ज्ञानस्वरूप सच्चिदानन्द प्रकृतिसे पर परमात्मा सब भूतोंके अन्तर्यामी - नियामक है, यह यदुकुलभूषण श्रीकृष्ण वही तो है।।''

''यद्यपि साकारोऽयं तथैकदेशी विभाति यदुनाथ: ।
सर्वगत: सर्वात्मा तथाप्ययं सच्चिदानन्द: ।।''
(प्रबोधसुधाकर २००)

''यद्यपि यदुनाथ श्रीकृष्णचन्द्र साकार हैं तथा एकदेशीसे दृष्टिगोचर होते हैं। तथापि ये सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वगत सर्वात्मा हैं।।''

विद्यामायारूप कारणोपाधिक परमात्माका अवतारविग्रह महदादिसे भी विभु होता है। केवल लीलासौख्यकी अभिव्यक्तिके लिए परिच्छिन्न - सरीखा परिलक्षित होता है। यह रहस्य दामोदर-लीलाके सन्दर्भमें रस्सीकी दो अङ्गुल न्यूनता और मृद्भक्षणलीला

तथा ''र्जुनके प्रति विभूतिमत्स्वरूपदर्शनके अवसरपर परिच्छिन्न - सरीखे बालमुकुन्दके मुखमें या श्रीकृष्णविग्रहमें विश्वरूपदर्शनके अनुशीलनसे सिद्ध है।

महाभारतके आश्वमेधिकपर्वके अन्तर्गत अनुगीतापर्व है। उत्तङ्क ऋषिपर द्रवित होकर भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें उस विश्वरूपका दर्शन कराया, जिसे उन्होंने युद्धके प्रारम्भमें अर्जुनको कराया था। **श्रीहरिका वह वैष्णवविश्वरूप शाश्वत (सनातन) है।** -

''ततः स तस्मै प्रीतात्मा दर्शयामास तद्वपुः।
शाश्वतं वैष्णवं धीमान् ददृशे यद् धनञ्जयः।।''
(अनुगीतापर्व ५५.४)

वामनपुराणके श्लोकके रूपमें प्रसिद्ध वचनके अनुसार भगवान् के सभी श्रीविग्रह शाश्वत अर्थात् अवतारकालके पूर्व तथा उत्तरकालमें भी विद्यमान, नित्य, हानोपादानरहित अर्थात् देह - देहीके विभागसे शून्य आत्मकल्प और विकृति एवम् प्रकृति - विकृति कोटिविनिर्मुक्त होते हैं। -

''सर्वे देहाः शाश्वताश्च नित्यास्तस्य महात्मनः।
हानोपादानरहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित्।।''

वेदान्तप्रस्थानके अनुसार सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म ही प्रपञ्चका उपादानकारण है। अतएव मृद्घटकी मृण्मयताके तुल्य प्राकृत प्राणियोंके शरीरकी भी पञ्च भूतोंके द्वारसे चिन्मयता ही चरितार्थ है।

''उपादानं प्रपञ्चस्य ब्रह्मणोऽन्यन्न विद्यते।
तस्मात्सर्वप्रपञ्चोऽयं ब्रह्मैवास्मि न चेतरत्।।''
(योगशिखोपनिषत् ४.३)

''यथैव द्विविधा रज्जुर्ज्ञानिनोऽज्ञानिनोऽनिशम्।
यथैव मृण्मयः कुम्भस्तद्वद्देहोऽपि चिन्मयः।।''
(योगशिखोपनिषत् ४.२१)

भगवद्विग्रहकी चिन्मयता कैमुतिकन्यायसे सिद्ध है। -

''चिदानन्दमय देह तुम्हारी बिगत बिकार जान अधिकारी।।''
(रामचरितमानस २, १२६.५)

भगवद्विग्रह **चिदानन्दमय** है। इस स्थलमें मयट् प्रत्ययका प्रयोग विकारार्थक नहीं है। प्राप्त प्रसङ्गमें विकारका अर्थ मायाशक्तिका महदादिके तुल्य तत्त्वान्तर विजातीय परिणाम या पञ्चभूतोंका पुष्प, फलादिके तुल्य तारतम्यज सङ्घात है। **विगतविकार**का अर्थ प्रकृतिका तत्त्वान्तर विजातीय परिणाम और पञ्चभूतोंके तारतम्यज सङ्घातका अभाव है। भगवद्विग्रहकी चिदानन्दमयताका परिज्ञान श्रीहरिगुरुकरुणासम्प्राप्त भक्ति, विरक्ति, भगवत्प्रबोध और योगसम्पत्सम्पन्न **अधिकारी**को ही सम्भव है।

प्रलयदशामें त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका नाम **माया** है। सर्गदशामें विशुद्धसत्त्वगुणप्रधाना प्रकृतिका नाम **माया** है। कारणोपाधिक चिद्धातुका नाम **ईश्वर** है। अतः ईश्वरका श्रीविग्रह पुष्प, फलादिके तुल्य पञ्चभूतोंका तारतम्यज सङ्घात या मायाशक्तिका महदादिके तुल्य तत्त्वान्तर विजातीय परिणाम नहीं हो सकता है।

मायोपाधिक चिद्धातु ईश्वर है। मलिनसत्त्वात्मिका अविद्योपाधिक या अन्तःकरणोपाधिक चिद्धातु जीव है। -

"मायोपाधिर्जगद्योनिः सर्वज्ञत्वादिलक्षणः।
पारोक्ष्यशबलः सत्याद्यात्मकस्तत्पदाभिधः।।
आलम्बनतया भाति योऽस्मत्प्रत्ययशब्दयोः।
अन्तःकरणसम्भिन्नबोधः सत्वंपदाभिधः।।"
(अध्यात्मोपनिषत् ३०. ३१)

"कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः।
कार्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोवशिष्यते।।"
(शुकरहस्योपनिषत् ३.१२ त्रिपाद्विभूतिमहा.४.८)

ऐसी स्थितिमें भगवद्विग्रह विशुद्धसत्त्वनिमित्तक और सच्चिदानन्दोपादानक हो सकता है। अथवा विशुद्धसत्त्वसे व्यङ्ग्य सन्धिनी, संवित् या ह्लादिनी शक्तिनिमित्तक और सच्चिदानन्दोपादानक हो सकता है। अभिप्राय यह है कि जलनिष्ठ स्निग्धताके सदृश सच्चिदानन्दकी स्वरूपभूता सन्धिनी, संवित् और ह्लादिनी शक्तिका विशुद्ध सत्त्व अभिव्यञ्जक संस्थान है।

आत्मार्थासृष्टिमें लीलाविग्रहादिकी स्फूर्तिमें उसका विनियोग है तथा सृष्टिसंरचनामें सत्त्वादि गुणोंका ही उपयोग है। चन्द्रकान्तमणिमें चन्द्रगत शीतलता, ह्लाद और प्रकाशकी अभिव्यञ्जता होनेके कारण चन्द्रनिष्ठ त्रिविध शक्तियोंकी संस्थितिके सदृश सत्त्वगुणमें ब्रह्मगत सत्ता, चित्ता तथा प्रियता तीनोंकी अभिव्यञ्जकता होनेके कारण सन्धिनी,संवित् और ह्लादिनी त्रिविध शक्तियोंकी संस्थिति मान्य है। -

''ह्लादिनी सन्धिनी संवित्त्वय्येका सर्वसंस्थितौ।
ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते।।''
(श्रीविष्णुपुराण १.१२.६८)

''सर्वाश्रय आपमें ह्लादिनी, सन्धिनी (विच्छेदरहित) और संवित् अभिन्नरूपसे रहती हैं। आपमें विषयजन्य आह्लाद देनेवाली सात्त्विकी या ताप देनेवाली तामसी अथवा उभयमिश्रा राजसी कोई भी संवित् नहीं है; क्यों कि आप स्वरूपतः निर्गुण हैं।।''

जिस प्रकार पाटल, पङ्कजादि पुष्पमें पुण्य गन्धादिगुणोंकी सहस्थिति होनेपर भी उनकी अभिव्यक्ति पुण्यसमवेत घ्राणादिशक्तिसमन्वित अन्तःकरणसे सम्भव है, वैसे ही ब्रह्ममें सन्धिनी आदि शक्तियोंकी सहस्थिति होनेपर भी उनकी अभिव्यक्ति परम पुण्यसमवेत शुद्धसत्त्वसे सम्भव है।

महाप्रलयकी दशामें प्रणियोंके अभुक्त कर्मोंके संस्काररूप अपूर्व महेश्वरकी महामायामें सन्निहित होकर महेश्वरसे तादात्म्यापन्न होकर स्थित रहते हैं। उस समय महेश्वर नामरूपादिस्फुरणरहित अद्वितीयरूपसे स्थित रहते हैं। कालकृत परिपाकके अनन्तर जब वे उद्बुद्धदशाको प्राप्त होनेकी स्थितिमें होते हैं, तब उनके निमित्तसे विशुद्धसत्त्वोपाधिक सर्वेश्वरमें सिसृक्षारूप ईक्षण होता है।-

''ततो नान्यन्मिषत्किञ्चित् स पुनः कालपाकतः।
प्राणिनां कर्मसंस्कारात्स्वशक्तिर्गतसत्त्वतः।।
स ऐक्षत जगत्सर्वं नु सृजा इति शङ्करः।।''
(सूतसंहिता ४ यज्ञवैभवखण्ड. ब्रह्मगीता २.३)

साङ्ख्यप्रस्थानमें भी महत्तत्त्वको ही प्रथम तत्त्वान्तरपरिणामरूप विजातीय कार्य माना गया है। जलज और आम्रादिके तुल्य भगवद्विग्रहको पञ्चभूतोंका तारतम्यज सङ्घात सिद्ध कर पाना तो सर्वथा असम्भव ही है।

अत: स्वशक्तिर्गतसत्त्वसमुद्भूत संविदादि - शक्ति - निमित्तक ही आत्मार्था सृष्टिरूप श्रीहरिके नाम, रूप, लीला, धामसंज्ञक चतुर्व्यूहका अभिव्यञ्जन सम्भव है। भगवद्विग्रहका उपादान साक्षात् चिदाकाशस्वरूप भगवत्तत्त्व ही है। सृष्टिसंरचनाके सदृश उसमें पञ्चभूत और जीवोंके अभुक्तकर्म हेतु नहीं हैं। यह तथ्य - "**आकाशशरीरं ब्रह्म**" (**तैत्तिरीयोपनिषत् १.६.२**), "**तदात्मानं स्वयमकुरुत**" (**तैत्तिरीयोपनिषत् २.७**) आदि श्रुतियोंके अनुशीलनसे आत्मसात् करने योग्य है।

यद्यपि लीलाविग्रहादिसंरचनाके तुल्य सृष्टिसंरचनामें भी प्रभु ही अभिन्ननिमित्तोपादान हैं तथा भगवल्लीलासे बद्ध, मुमुक्षु, साधक और सिद्ध और अन्य स्थावर - जङ्गम भी लाभान्वित होते हैं। साधुपरित्राण तथा दुष्टदलन अवतारमें सन्निहित हेतु अवश्य हैं। सृष्टिसंरचना और लीलावतार दोनोंका प्रयोजन अकृतार्थ प्राणियोंको कृतार्थ करना ही है। नृसिंहादिविग्रहकी विकरालता तथा कुरूपताके मूलमें हिरण्यकशिपु आदिको प्राप्त वररूप हेतु भी स्पष्ट ही है। तथापि जीवनिष्ठ अविद्या, काम और कर्म लीलाविग्रहकी स्फूर्तिमें साक्षात् हेतु नहीं हैं। जीवशरीरमें अधिष्ठानात्मक ब्रह्मके अतिरिक्त निमित्त और उपादान दोनों ही ब्रह्मविज्ञानसे बाध्य हैं, लीलाविग्रहमें अधिष्ठानात्मक ब्रह्म ही साक्षात् उपादान है तथा विशुद्धसत्त्वमें स्फुरित साक्षात् सन्धिनी, संवित् और ह्लादिनी स्वरूपभूता शक्ति निमित्त है।

ध्यान रहे ; पृथ्वीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धरूप पाँचों गुणोंकी प्रतिष्ठा होती है। जलमें शब्द, स्पर्श, रूप तथा रसरूप चार गुणोंकी प्रतिष्ठा होती है। तेजमें शब्द, स्पर्श और रूप तीन गुणोंकी प्रतिष्ठा होती है। वायुमें शब्द तथा स्पर्शरूप दो गुणोंकी प्रतिष्ठा होती है। आकाशमें केवल शब्दकी स्थिति होती है। कारणके गुण कार्यमें अनुगत होते हैं। अतएव पञ्च भूतोंमें पृथ्वीकी प्रधानता है। पाञ्चभौतिक शरीर शब्द, स्पर्श, रूप, रस

और गन्धरूप पञ्च विषयोंके विषमीभावको प्राप्त होनेपर प्राणियोंको सुलभ होते हैं, अन्यथा नहीं। पाञ्चभौतिक धातुओंमें मनुष्य तर्कणाशक्तिके द्वारा उनके प्रमाणोंका प्रतिपादन करते हैं; परन्तु जो अचिन्त्य भाव हैं, उन्हें तर्कसे सिद्ध करनेका प्रयास नहीं करना चाहिये। प्रकृतिसे पर पदार्थ अचिन्त्य है। -

''भूमिरापस्तथा वायुरग्निराकाशमेव च।
गुणोत्तराणि सर्वाणि तेषां भूमिः प्रधानतः।।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः।
भूमेरेते गुणाः प्रोक्ता ऋषिभिस्तत्त्ववेदिभिः।।
एते पञ्च गुणा राजन् महाभूतेषु पञ्चसु।
वर्तन्ते सर्वलोकेषु येषु भूताः प्रतिष्ठिताः।।
अन्योन्यं नाभिवर्तन्ते साम्यं भवति वै यदा।।
यदा तु विषमीभावमाविशन्ति परस्परम्।
तदा देहैर्देहवन्तो व्यतिरोहन्ति नान्यथा।।
तत्र तत्र हि दृश्यन्ते धातवः पाञ्चभौतिकाः।
तेषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते।।
अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यत्तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम्।।
(महाभारत भीष्मपर्व ५.४,५,७,८,९,११,१२)

अतीन्द्रिय अतएव अनुमेय और अविज्ञेय **अव्यक्त** है और इन्द्रियगोचर चराचर विश्व व्यक्त है।-

''यदविज्ञेयं तदव्यक्तम् ....व्यक्तं विश्वं चराचरात्मकम्। यद्व्यज्यते तद्व्यक्तम्।'' (अव्यक्तोपनिषत् १)

''इन्द्रियैर्गृह्यते यद्यत् तत्तद् व्यक्तमितिस्थितिः।
अव्यक्तमिति विज्ञेयं लिङ्गग्राह्यमतीन्द्रियम्।।''
(महा० शान्तिपर्व १८९.१५)

''इन्द्रियोंसे जिसका ग्रहण होता है, वह सब व्यक्त कहलाता है। जो इन्द्रियातीत होनेके कारण अनुमानसे ही जाना जाय, उसे अव्यक्त समझना

चाहिये।।"

अवतारवादमें अनास्थावश यह कहा जा सकता है कि कोई भी देहधारी जन्म, मरण, भूख, प्यास, हर्ष, शोकादिसे विमुक्त नहीं हो सकता। परन्तु वस्तुस्थितिकी सहिष्णुता अर्जित करनेकी आवश्यकता है। सिद्धोंके प्राकट्यकी जन्मसे विलक्षणता और उनके तिरोधानकी मृत्युसे विलक्षणता माननेकी बाध्यता है। "**तरति शोकमात्मवित्**"(**छान्दोग्योपनिषत् ७.१.३**), "**धीरो हर्षशोकौ जहाति** "(**कठोपनिषत् १.२.१२**) आदि वचनोंके अनुसार विवेककी प्रगल्भतासे हर्ष और शोकका अतिक्रम सम्भव है। प्रत्येक देहधारी सुषुप्तिमें सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास तथा हर्ष और विषादादिसे अतिक्रान्त होता है। बलातिबलाविद्याके प्रभावसे भी भूख - प्यासादि द्वन्द्वोंका अतिक्रम सम्भव है। समाधिमें प्राणस्पन्दनके सहितचित्तवृत्तिका निरोध हो जानेसे सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास तथा हर्ष और विषादादिसे त्राण सम्भव है। श्रीदयानन्दजीके अनुसार भी मुक्त जीवोंके लोकको मर्त्यलोककी अपेक्षा दिव्य माननेकी बाध्यता है। साथ ही उनके द्वारा "**प्रजापतिः......विजायते**" (**यजुः ३१.१९**) **का**" ....**विशेष करके प्रकट होता है।** " - यह अर्थ सगुणनिराकारका विशेष प्राकट्य सगुणसाकार ही सिद्ध करता है। स्वप्नमें सुलभ शरीर आत्मचैतन्यसे अधिष्ठित वासनावासित अर्द्धनिद्रित मनोमय होता है। अतएव उसकी सप्त धातुमयता प्रातीतिक है तथा असप्त धातुमयता स्वाभाविक सिद्ध है। साङ्ख्यप्रस्थानके अनुसार मनोमय होनेके कारण स्वप्नशरीर अभौतिक होता है। स्वप्नभङ्गके अनन्तर स्वप्नशरीरका अवशेष आत्मचैतन्यसे अधिष्ठित मनके अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं रहता। छान्दोग्योपनिषत् के अनुसार मनसहित इन्द्रियोंकी भौतिकताको स्वीकारकर अहमात्मक अहङ्कारकी तथा महदात्मिका बुद्धिकी अभौतिकताको सिद्ध करनेवाली उपनिषत् और महाभारतकी एक विशिष्ट प्रक्रिया है। उसके अनुसार " **सधीः स्वप्नो भूत्वेमं लोकमतिक्रामति** " (**बृहदारण्यक ४.३.७**)

आदि श्रुतियोंके अनुरोधसे स्वप्नदेहादिको आत्माधिष्ठित बुद्धिका वैभव माननेपर साङ्ख्यगर्भित वेदान्तनयानुसार स्वप्नशरीरकी असप्त धातुमयता और अभौतिकता सिद्ध होती है। ''**इन्द्रियाणि तन्मात्रेषु तन्मात्राणि भूतादौ विलीयन्ते, भूतादिर्महति विलीयते, महानव्यक्ते विलीयते**'' (**सुबालोपनिषत् २**) इस श्रुतिमें ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियसहित मनोरूप इन्द्रियोंका लय तन्मात्राओंमें, तन्मात्राओंका लय भूतोंके उद्भवस्थान अहम् में, अहम्का लय महत् में और महत् का लय अव्यक्तमें सिद्ध किया गया है। अत: मन सहित ब्राह्येन्द्रियोंका उद्गमस्थान तन्मात्रात्मक अपञ्चीकृत पञ्च महाभूत मान्य हैं। उक्त हेतुसे मनकी भौतिकता और अहम् और बुद्धिरूप महत्की अभौतिकता सिद्ध है। महाभारतके वसिष्ठ और करालजनकसम्वादके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि निर्गुण ब्रह्मसे प्रकृतिकी स्फूर्ति विद्यासर्ग है। प्रकृतिसे महत् और महत्से अहम् की अभिव्यक्ति अविद्या सर्ग है। अहङ्कारसे तन्मात्रात्मक पञ्च महाभूतोंकी उत्पत्ति भूतसर्ग है। शब्दादि पञ्च विषयोंके सहित आकाशादि पञ्च स्थूल भूतोंकी उत्पत्ति वैकृत -सर्ग है। दश इन्द्रियोंके सहित मनकी पञ्च तन्मात्रात्मक महाभूतोंसे उत्पत्ति भौतिकसर्ग है। -

''**पञ्चमं विद्धि राजेन्द्र भौतिकं सर्गमर्थवत्।**
श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा घ्राणमेव च पञ्चमम्।
वाक् च हस्तौ च पादौ च पायुमेढ्रं तथैव च।।
बुद्धीन्द्रियाणि चैतानि तथा कर्मेन्द्रियाणि च।
सम्भूतानीह युगपन्मनसा सह पार्थिव।।''
(**महाभारतशान्तिपर्व ३०२.२६ -२८**)

उक्त वचनके अनुसार मनसहित इन्द्रियोंकी भौतिकता तथा अहमात्मक अहङ्कारकी और महदात्मिका बुद्धिकी अभौतिकता सिद्ध है। जब जीवनिष्ठ मनोवृत्तिके योगसे व्यक्त चिन्मय स्वप्नशरीरकी ऐसी लोकोत्तर चमत्कृति है, तब मायावृत्तिके योगसे व्यक्त भगवद्विग्रहकी जन्म तथा मृत्यु आदिसे पारङ्गतता कैमुतिकन्यायसे सिद्ध है। उसकी दिव्यताका परिज्ञान किसी निगमागमवित् योगनिष्ठ सहृदयको ही हो सकता है।

प्रश्न उठता है कि शब्द आकाशका, स्पर्श वायुका, रूप तेजका, रस जलका और गन्ध पृथिवीका गुण है। गुण स्वाश्रय भूतसंज्ञक द्रव्यके द्योतक और अनुमापक हैं। हमारे शरीर शब्दादि गुण युक्त होनेसे भौतिक हैं। भगवद्विग्रह भी शब्दादिगुणसम्पन्न होनेसे भौतिक सिद्ध होते हैं। ऐसी स्थितिमें भगवद्विग्रहकी अभौतिकता किस प्रकार चरितार्थ है? अवतारविग्रहकी दिव्यताकी सिद्धि विशुद्ध सत्त्वसमुद्भूत आकाशादि पञ्चभूतकी दिव्यतासे सम्भव होनेपर भी उसकी अभौतिकता किस प्रकार चरितार्थ है?

उत्तर है- मनकी भौतिकता शास्त्रसिद्ध और अनुमेय है, परन्तु मनकी असप्तधातुमयता स्वतःसिद्ध होनेपर भी मयोमय शरीरकी असप्तधातुमयता अनुमेय है। तद्वत् भगवद्विग्रहकी अभौतिकतादि शास्त्रैक समधिगम्य है। यथा -

''निर्गुणो निष्कलश्चैव निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः।
एतत् त्वया न विज्ञेयं रूपवानिति दृश्यते।।
इच्छन् मुहूर्तान्नश्येयमीशोऽहं जगतो गुरुः।
माया ह्येषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद।।
सर्वभूतगुणैर्युक्तं नैवं त्वं ज्ञातुमर्हसि।
मयैतत् कथितं सम्यक् तव मूर्तिचतुष्टयम्।।
अहं हि जीवसंज्ञातो मयि जीवः समाहितः।
नैवं ते बुद्धिरत्राभूद् दृष्टो जीवो मयेति वै।।
अहं सर्वत्रगो ब्रह्मन् भूतग्रामान्तरात्मकः।
भूतग्रामशरीरेषु नश्यत्सु न नशाम्यहम्।।''
(महाभारत शान्तिपर्व ३३९,४५ -४८)

'' हे नारद ! मैं निर्गुण, निष्कल, निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह हूँ। तुम ऐसा मत समझ लेना कि ये रूपवान् हैं, इसलिए दिखायी देते हैं। कारण यह है कि मैं इच्छा करते ही एक ही क्षणमें अदृश्य हो सकता हूँ। मैं समस्त जगत् का ईश्वर और गुरु हूँ। तुम जो मुझे देख रहे हो, यह मेरी मायाकी चमत्कृति है। तुम मुझे सम्पूर्ण प्राणियोंके गुणोंसे युक्त न जानो। मैंने वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनुरुद्ध संज्ञक चतुर्व्यूहका तुम्हारे सम्मुख विधिवत्

प्रतिपादन किया है। निःसन्देह, जीव मुझमें सन्निहित हैं, अतएव जीव नामसे भी मेरी प्रसिद्धि है। परन्तु इस सन्दर्भमें तुम्हारी ऐसी बुद्धि न हो कि मैंने जीवका दर्शन किया है।। "

अवतारविग्रहकी नित्यता और अभौतिकताकी सिद्धि शास्त्रसम्मत है। -

''देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा।।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते।''
(दुर्गासप्तशती १. ६५, ६६)

''नित्या होनेपर भी देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिए जब वह अवतीर्ण होती है, तब लोकमें उत्पन्न हुई कही जाती है।।''

''अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य
स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि।
नेशे महि त्ववसितुं मनसाऽऽन्तरेण
साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः।''
(श्रीमद्भागवत १०.१४.२)

''स्वप्रकाश परमात्मन् ! आपका यह श्रीविग्रह भक्तोंकी लालसा पूर्ण करनेवाला है। आपने हमपर अनुग्रह करनेकी भावनासे इसे स्वेच्छापूर्वक ही धारण किया है। अविद्या, काम, कर्मके वशीभूत जीवोंको सुलभ शरीर - सदृश यह पाञ्चभौतिक बिल्कुल नहीं है। मैं या अन्य कोई समाधिस्थ होकर भी इस अनुपम और अद्भुत विग्रहकी महिमा नहीं जान सकता। ऐसी स्थितिमें कैमुतिकन्यायसे सिद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मरूप साक्षात् आपकी महिमाको कोई एकाग्रचित्तसे भी जान ही कैसे सकता है?''

भूमितुल्य तुरीय, बीजतुल्य प्राज्ञेश्वर, अङ्कुरतुल्य हिरण्यगर्भ और वृक्षादितुल्य वैश्वानरसे विलक्षण फलतुल्य श्रीरामकृष्णादि मुक्त मुनियोंके भी मृग्य (अनुसन्धेय)निरावरण ब्रह्म हैं। वे यदुकुल, मधुकुलके पुण्यसारसर्वस्व और भक्तप्रेमके पुञ्जीभूत स्वरूप हैं। श्रुतियोंके एकीभूत गुप्त वित्त हैं। उनकी श्यामरूपता अनन्तताका अभिव्यञ्जक है। भक्तोंको वात्सल्य और

माधुर्यादि भावानुरूप सौख्य सुलभ करानेके लिए ही उन परमानन्दस्वरूप सनातन ब्रह्मका अवतार है। -

''मुक्तमुनीनां मृग्यं किमपि फलं देवकी फलति।
तत्पालयति यशोदा प्रकाममुपभुञ्जते गोप्य:।।''

''पुञ्जीभूतं प्रेमगोपाङ्गनानां मूर्तीभूतं भागधेयं यदूनाम्।
एकीभूतं गुप्तवित्तं श्रुतीनां श्यामीभूतं ब्रह्म मे सन्निधत्ताम्।।''

''अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्।।''
(श्रीमद्भागवत १०.१४.३३)

श्रीकृष्णादि क्षणिक विज्ञानके विवर्त नहीं, प्रतिक्षण परिवर्तनशील आरब्ध या परिणामशील द्रव्य नहीं। किन्तु मूर्त होते हुए पूर्ण होनेके कारण प्रत्यभिज्ञाके विषय नहीं। अत: सच्चिदानन्दसरोवरसमुद्भूत अनाघ्रात सौरभ, अनपहृत सौगन्ध्य, अनुपहत और अदृष्ट वैभवस्वरूप पङ्कजके रूपमें उपमित होने योग्य हैं। -

''अनाघ्रातं भृङ्गैरनपहृतसौगन्ध्यमनिलै-
रनुत्पन्नं नीरेष्वनुपहतमूर्मीकणभरै:।
अदृष्टं केनापि क्वचन च चिदानन्दसरसो
यशोदाया: क्रोडे कुवलयमिवौजस्तदभवत्।।''
(आनन्दवृन्दावनचम्पू २.११)

उक्त अद्भुत स्वरूपवैभवके कारण ही जिनके अङ्गश्रीकी मङ्गलमयी मानसी प्रतिमाको सौभाग्यशाली भक्त एक वार भी हृदयमें धारण कर भागवती गति प्राप्त करते हैं। महदादि कार्यप्रपञ्च और मायासे विलक्षण उन सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्णचन्द्रने करुणावश साक्षात् स्वयं ही जब अघासुरके उदरमें प्रवेश कर ग्वालबालोंको अमृतवर्षिणी दृष्टिसे उज्जीवित और अघको प्राण -विहीन किया, तब असुरकी पुर्यष्टकसहित जीवकला भास्वर शुक्ल तेजोमयरूपसे भगवद्विग्रहमें प्रविष्ट कर श्रीकृष्णसायुज्यको प्राप्त कर गयी।-

''सकृद्यदङ्गप्रतिमान्तराहिता मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम्।
स एव नित्यात्मसुखानुभूत्यभिव्युदस्तमायोऽन्तर्गतो हि किं पुन:।।''
(श्रीमद्भागवत १०.१२.३९)

वस्तुतः "**न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यते ऽविनाशित्वात्.......**" (**बृहदारण्यकोपनिषत् ४.३.२३**) आदि श्रुतियोंके अनुसार इन्द्रियजन्य उत्पत्तिविनाशयुक्त अनित्य दृष्टिसे भिन्न द्रष्टाकी स्वरूपभूता नित्यदृष्टिसे स्वप्नमें दर्शनादिकी सिद्धि होती है तथा सुषुप्तिमें सुख और अज्ञानका भान होता है। ब्रह्मात्मविषयक मनोवृत्तिरूप साक्षात्कारकी अनित्यता और वृत्तिव्यङ्ग्य स्वरूपभूत साक्षात्कारकी नित्यता प्रमाणविदोंको मान्य है। -" **न चायमद्वैतसाक्षात्कारोप्यन्तःकरणवृत्तिभेद एकान्ततः परमार्थः। यस्तु साक्षात्कारो भाविकः, नासौ कार्यः, तस्य ब्रह्मस्वरूपत्वात्।।**" (**भामती १.१.४**)। तद्वत् कूटस्थ सत्य परमात्माकी अपेक्षा किञ्चित् - न्यून सत्य विशुद्ध सत्त्वात्मिका मायावृत्तिरूपा दृष्टिप्रसूत अमृतसंज्ञक हरिहरादिविग्रहकी अपेक्षा भी स्वरूपभूता सन्धिनी, संवित् तथा ह्लादिनी - शक्तिनिमित्तक ब्रह्मोपादानक भगवद्विग्रहकी नित्यता सिद्ध है। यह रहस्य विष्णुपुराणके उद्धरणसे सिद्ध है -

"आभूतसंप्लवं स्थानममृतत्वं विभाव्यते।
त्रैलोक्यस्थितिकालोऽयमपुनर्मार उच्यते।।"
(श्रीविष्णुपुराण २. ८. ९५)

"भूतोंके प्रलयपर्यन्त स्थिर अनावृत्तिरूप ध्रुवस्थान अमृतत्व कहा जाता है। त्रिलोकीकी स्थितिपर्यन्त इस कालको ही अपुनर्मार (पुनर्मृत्युरहित) कहा जाता है।।"

"ह्लादिनी सन्धिनी संवित्त्वय्येका सर्वसंस्थितौ।
ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते।।"
(श्रीविष्णुपुराण १.१२.६८)

"सबके आधारभूत आपमें ह्लादिनी (निरन्तर आह्लादित करनेवाली), सन्धिनी (विच्छेदरहित) तथा संवित् (विद्याशक्ति) अभिन्नरूपसे रहती हैं। आपम गुणवैभवरूप आह्लाद , ताप या उभयात्मिका कोई भी शक्ति साक्षात् नहीं है, क्यों कि आप निर्गुण हैं।।"

अभिप्राय यह है कि मृत्तिकामें घटादि -उत्पादिनी शक्तिके सदृश कारणमें कार्याभिव्यञ्जनसामर्थ्य अपेक्षित है। "**निर्गुणं निष्क्रियम्** ", **(अध्यात्मोपनिषत् ६२, त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ७.१२)** आदि श्रुतियोंके अनुसार, परमात्मा निर्गुण है। अत: उसमें सत्त्वप्रभव आह्लाद और संज्ञान, तम:प्रभव ताप और रज:सम्भूता तृष्णा, क्रियादि असम्भव है। बिना ज्ञानेच्छाक्रियाके कर्मसम्पादन और आह्लादादि अभिव्यञ्जन भी असम्भव है। भगवत्स्वरूप स्वगतादिभेद शून्य है। अत: उसमें सुख, संवित्, आसक्ति और आवरणादि असङ्गत है। ऐसी स्थितिमें गन्धतन्मात्रामें गन्ध और गन्धीरूप गुणगुणीकी एकार्थताके तुल्य संविदादिशक्ति और सर्वात्मा सर्वेश्वरमें एकात्मता है। चन्द्रमामें ह्लाद, प्रकाश और अमृतवर्षिणी त्रिविध शक्तियोंका निसर्गसिद्ध सन्निवेश है। रसिक, प्रकाश्य और पायसादि अभिव्यञ्जकसंस्थानके योगसे उसकी स्फूर्ति सम्भव है। तद्वत् परमात्मामें ह्लाद, प्रकाश और सन्धिनी त्रिविध शक्तियोंका निसर्गसिद्ध सन्निवेश है। त्रिगुणमयी प्रकृतिगत सत्त्वगुण ह्लाद और संवित् का तथा तमोगुण सन्धिनीका अभिव्यञ्जक संस्थान है। रजोगुण सत्त्वगुण और तमोगुणका उपोद्बलक है। प्रिय, मोद और प्रमोदरूप ह्लाद ह्लादिनी - शक्तिका सत्त्वगत प्रतिफल है। ताप, तृष्णा, प्रमादादि रजोगुण - तमोगुण - समुद्भूत हैं।

वेदान्तप्रस्थानमें दु:ख, अज्ञानादि विरूप गुण त्रिगुणमयी प्रकृतिके परिणामभूत हैं। सुख, संवित्, शान्ति, समत्व, असङ्गत्वादि अनुरूप गुण सच्चिदानन्दस्वरूप निर्गुणके अभिव्यक्तरूप हैं। अचित् **सत्त्व** संविद्रूप आत्माका अभिव्यञ्जक है, न कि संविद्रूप । असुख **सत्त्व** सर्वोपप्लवशून्य सुखस्वरूप आत्माका अभिव्यञ्जक है, न कि सुखरूप। सम और असङ्ग निर्गुण सर्वेश्वरका अभिव्यक्तरूप समत्व और असङ्गत्व अगुण होते हुए ही गुणपद वाच्य हैं। सुख, संवित्, शान्ति, समत्व, असङ्गत्वादि अनुरूप गुणगण शेष होनेसे भक्त हैं, असङ्ग अद्वय सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा शेषी होनेसे भजनीय हैं। -

"मां भजन्ति गुणा: सर्वे निगुणं निरपेक्षकम्।
सुहृदं प्रियमात्मानं साम्यासङ्गादयोऽगुणा:।।"
(श्रीमद्भागवत ११. १३.४०)

" मुझ निर्गुण, निरपेक्ष,सुहृत्, प्रिय और सर्वात्माका गुणगण भजन करते हैं। वस्तुतः साम्य, असङ्गता, सुख, संवित्, शान्ति आदि गुणगण मुझ निर्गुणका अभिव्यञ्जनमात्र होनेसे अगुण ही हैं। "

आत्माकी विरूप और अनुरूप प्रतीति तथा अभिव्यक्तिके कारण सबकी आत्मरूपता भी चरितार्थ है। स्वातिगत जलकी जलपात्र, पद्मपत्र, वेणु, शुक्ति, सर्पादिके योगसे तथा जलगत माधुर्यकी इक्षु, निम्ब, मिर्चादिके योगसे अनुरूप और विरूप प्रतीति एवम् अभिव्यक्तिमें युक्त दृष्टान्त है। उक्त रीतिसे सात्त्विकी, राजसी और तामसी बहिरङ्गा तथा सन्धिनी, संवित् और ह्लादिनी अन्तरङ्गा द्विविध - शक्तियोंके द्वारा निर्गुणनिराकार ब्रह्म सर्वान्तर्यामी प्राज्ञेश्वर और तैजससूत्रहिरण्यगर्भरूपसे सगुणनिराकार और विश्वविराट् - रूपसे सगुणसाकार होता है। **भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने स्वयंको अज तथा अव्ययात्मा कहकर अपने निर्गुणनिराकाररूपका और लोकेश्वर तथा प्रकृतिके अधीश्वर कहकर सगुणनिराकाररूपका एवम् युगानुरूप सम्भवनशील कहकर सगुणसाकार स्वरूपका प्रतिपादन किया है।-**

"अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।।"
(श्रीमद्भगवद्गीता ४.६)

इस सन्दर्भमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका गीतामें सन्निहितवचन भी मननीय है। श्रीहरिने सुख और चेतनाको विकाररूप क्षेत्र कहा है। - "....इच्छा द्वेषः **सुखं** दुःखं सङ्घातश्**चेतना** धृतिः। **एतत्क्षेत्र** समासेन **सविकारम**दाहृतम्।।" (**श्रीमद्भगवद्गीता १३.६**) जब कि परम प्रेमास्पद होनेसे आत्मा "**सुखमस्यात्मनोरूपम्**" (**श्रीमद्भागवत ७.१३.२६**), "**यो वै भूमा तत्सुखम्**" (**छान्दोग्योपनिषत् ७. २३.१**) आदि वचनोंके अनुसार सुखरूप है और चित्पदवाच्य विज्ञाता होनेके कारण "**संविदेषा स्वयम्प्रभा**" (**पञ्चदशी १.७**), "**ज्ञानस्यान्तो न विद्यते**" (**महाभारत - आश्वमेधिकपर्व ४४.२१**), "**न हि विज्ञातुर्विज्ञातेर्विपरिलोपो विद्यते**" (**बृहदारण्यकोपनिषत् ४.३.३०**),

"**सच्चिदानन्दमात्रः**" (**नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषत् ७**) आदि वचनोंके अनुसार चेतन है। ऐसी स्थितिमें यह माननेकी बाध्यता है कि निर्गुणका व्यक्तरूप गुण है, क्षेत्रज्ञका व्यक्तरूप क्षेत्र है। इस सन्दर्भमें न्यायनयानुसार ज्ञान और आनन्दकी गुणरूपताका तथा वेदान्तनयानुसार आत्मरूपताका अनुशीलन भी कर्तव्य है।

उत्पत्ति, स्थिति, संहृति, निग्रह और अनुग्रहरूप कृत्यभेदसे सगुणसाकार परमेश्वरके पञ्च प्रभेद हैं। उत्पत्ति नामक कृत्यके योगसे परमेश्वरकी हिरण्यगर्भात्मक ब्रह्मा संज्ञा है। हिरण्यगर्भात्मक **ब्रह्मा**की सूर्यसे तादात्म्यापत्ति है। स्थितिनामक कृत्यके योगसे परमेश्वरकी **विष्ण** संज्ञा है। संहृतिनामक कृत्यके योगसे परमेश्वरकी **शिव** संज्ञा है। निग्रहनामक कृत्यके योगसे परमेश्वरकी **शक्ति** संज्ञा है और अनुग्रहनामक कृत्यके योगसे परमेश्वरकी **गणपति** संज्ञा है। अतएव उक्त पञ्च देवोपासक मूलतः तथा वस्तुतः एक परमात्मदेवके ही उपासक मान्य हैं। भगवान् सूर्यके उपासकको **सौर** कहते हैं। भगवान् विष्णुके उपासकको **वैष्णव** कहते हैं। भगवान् शिवके उपासकको **शैव** करते हैं। भगवान् गणपतिके उपासकको **गाणपत्य** कहते हैं। भगवती शक्तिके उपासकको **शाक्त** कहते हैं। -

" शैवाः सौराश्च गाणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः।
तमेव प्राप्नुवन्तीह वर्षापः सागरं यथा।।
एकः स पञ्चधा जातः क्रियया नामभिः किल।
देवदत्तो यथा कश्चित्पुत्राद्याह्वाननामभिः।। "
(आनन्दरामायण विलासकाण्ड ८. ९,१०)

"शैव , सौर , गाणेश (गणेशोपासक), वैष्णव तथा शाक्त संज्ञक पञ्च देवोपासक उस एक ब्रह्मको उसी प्रकार प्राप्त कर लेते हैं ; जिस प्रकार, वर्षाका जल सागरमें समा जाता है। वह एक ब्रह्म अचिन्त्य शक्तिके योगसे उत्पत्ति, स्थिति, संहृति, निग्रह और अनुग्रहरूप क्रिया तथा सूर्य, विष्णु, शिव, शक्ति और गणेशरूप नामभेदसे पञ्च देवोंके रूपमें वैसे ही परिलक्षित होता है, जैसे एक ही व्यक्ति नाम, रूप और क्रिया और सम्बन्धभेदसे देवदत्त, श्याम, वैदिक और पुत्रादि रूपसे निरूपित होता है।।"

''चिन्मस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिण:।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणोरूपकल्पना।।
रूपस्थानां देवतानां पुंस्त्र्यङ्गास्त्रादिकल्पना।
द्वि चत्वारि षडष्टाऽऽसां दश द्वादश षोडश।।
अष्टादशामी कथिता हस्ता: शङ्खादिभिर्युता:।
सहस्रान्तास्तथा तासां वर्णवाहनकल्पना।।
शक्तिसेनाकल्पना च ब्रह्मण्येवं हि पञ्चधा।
कल्पितस्य शरीरस्य तस्य सेनादिकल्पना।।''

(श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषत् १, ७ -१०)

''यद्यपि ब्रह्म चिन्मय, निष्कल, अशरीर है, तथापि उपासकोंके कार्यकी सिद्धिके लिये ब्रह्मके विविध रूपकी ब्रह्मद्वारा कल्पना (लीलोपयुक्त भावना) की जाती है। साकारभावको प्राप्त उन देवताओंके स्त्री, पुरुष, अङ्ग और अस्त्रादिकी भी कल्पना की जाती है। विविधरूपोंमें अभिव्यक्त पञ्चदेवात्मक परब्रह्मके अवतारविग्रहके शङ्ख, चक्रादिसे सम्पन्न चार, छह, आठ, दस, बारह, सोलह, अट्ठारह, सहस्र भुज तथा वर्ण और वाहनादिकी और शक्ति सेनादिकी उद्भावना भक्तोंके सर्वविध उत्कर्षकी भावनासे है।।''

भगवद्विग्रहकी असप्तधातुमयता और अभौतिकता ही चरितार्थ है। -''**न भूतसङ्घसंस्थानं देवस्य परमात्मन:। न तस्य प्राकृतामूर्तिर्मांसमेदोऽस्थिसम्मिता ।।'' (परमात्मिकोपनिषत् - टीकासमुद्धृता)**

अतएव शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य और गणेशमें अभेदबुद्धिरूप योग सम्यक् -योग है।। -

''शिवे विष्णौ च शक्तौ च सूर्ये मयि नराधिप।
याभेदबुद्धिर्योग: स सम्यग्योगो मतो मम।।''

(गणेशगीता १.२१)

७.अवतार-स्वरूप

सामान्य रीतिसे अवतारका अर्थ जन्म होता है। "**अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत। अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना।।" (श्रीमद्भगवद्गीता २.२८) , "परस्तस्मात्तु भावाऽन्योऽव्यक्तो व्यक्तात्सनातन:। य: स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति।। अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहु: परमां गतिम्। यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।।" (श्रीमद्भगवद्गीता ८.२०,२१)** के अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध होता है कि व्यक्त शरीर और संसारका मूल अव्यक्त है और अव्यक्तका परमाश्रयरूप मूल सनातन अव्यक्त अर्थात् अव्यक्ताक्षर है। वही स्वप्रकाश भगवत्तत्त्व है। वेदान्तप्रस्थानके अनुसार वह जगत्कारण है। जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, संहार तथा जीवोंपर निग्रह और अनुग्रह - उसके पाँच कृत्य हैं। पृथ्वीके तुल्य वह उत्पत्तिनामक कृत्यका निर्वाहक है। जलके तुल्य वह स्थितिनामक कृत्यका निर्वाहक है। तेजके तुल्य वह संहारनामक कृत्यका निर्वाहक है। वायुके तुल्य वह निग्रहनामक कृत्यका निर्वाहक है। आकाशके तुल्य वह अनुग्रहनामक कृत्यका निर्वाहक है। कृत्यभेदसे उसके नाम, रूप, लीला और धाममें भी भेद है। उत्पत्तिनामक कृत्यके योगसे उसकी **हिरण्यगर्भात्मक ब्रह्मा या सूय**संज्ञा है। स्थितिनामक कृत्यके योगसे उसकी **विष्णु**संज्ञा है। संहारनामक कृत्यके योगसे उसकी **शिव** संज्ञा है। निग्रहनामक कृत्यके योगसे उसकी **शक्ति** संज्ञा है। अनुग्रहनामक कृत्यके योगसे उसकी **गणपति** संज्ञा है। इन पाँच रूपोंमें और इनके विविध अवतारोंके रूपमें एक परमेश्वरकी ही आराधना और उपासना विहित है। अतएव एक देववाद ही सनातन सिद्धान्त है। कृतयुगमें

इस तथ्यका सर्वतोभावेन निर्वाह होता था, जैसा कि महाभारतके अनुशीलनसे सिद्ध है। -

''एकदेवसदायुक्ता एकमन्त्रविधिक्रिया:।
पृथग्धर्मास्त्वेकवेदा धर्ममेकमनुव्रता:।।''
(महाभारत वनपर्व १५०.२०)

'' सत्ययुगमें सब एक परमात्मदेवको ही भजनीय समझकर उनमें ही चित्त लगाये रहते थे, एकमात्र उन्हींके प्रणवप्रधान मन्त्रका जप करते थे तथा विधिसम्मतक्रियाका उन्हींके लिये सम्पादनकर उन्हींके प्रति क्रियाकलापको समर्पित करते थे। धर्म और ब्रह्मकी सिद्धिमें एकमात्र वेदको प्रमाण मानते हुए ही अपने - अपने वर्ण और आश्रमके अनुरूप विविध धर्मोंका अनुष्ठान करते थे। ऐसा होनेपर भी सब वेदसम्मत सनातन धर्मका ही अनुगमन करनेवाले थे।।''

उत्पत्तिनामक कृत्यके निर्वाहक हिरण्यगर्भात्मक **सूय**के उपासक **सौर** कहे जाते हैं। स्थितिनामक कृत्यके निर्वाहक **विष्ण**के उपासक **वैष्णव** कहे जाते हैं। संहारनामक कृत्यके निर्वाहक **शिव**के उपासक **शैव** कहे जाते हैं। निग्रहनामक कृत्यके निर्वाहक **शक्ति**के उपासक **शाक्त** कहे जाते हैं। अनुग्रहनामक कृत्यके निर्वाहक **गणपति**के उपासक **गाणपत्य** कहे जाते हैं। ''**तदैक्षत** (छान्दोग्योपनिषत् ६.४.३), ''**स ईक्षाञ्चक्रे**'' **(प्रश्नोपनिषत् ६.३)**, ''**सोऽकामयत**'' **(तैत्तिरीयोपनिषत् २.६)** आदि श्रुतियोंके अनुसार सद्रूप परमात्मा कार्यप्रपञ्चका निमित्त कारण है। '' **बहु स्यां प्रजायेय** '' **(तैत्तिरीयोपनिषत् २.६)** ''**कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवेत्**'' **(मुण्डकोपनिषत् १.१.३)**, ''**तदात्मानं स्वयमकुरुत**'' **(तैत्तिरीयोपनिषत् २.७)**, ''**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**'' **(छान्दोग्योपनिषत् ३.१४.१)** आदि श्रुतियोंके अनुसार बहुभवनसामर्थ्यसम्पन्न सद्रूप ब्रह्म कार्यप्रपञ्चका उपादान कारण है। अत एव वेदान्तदर्शनके अनुसार जगत् का अभिन्न निमित्तोपादानकारण है -

''**प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात्**'' **(ब्रह्मसूत्र १.४.२३)**

पृथिव्यादि कार्यप्रपञ्च अनित्य, अचित् और दु:खरूप अर्थात् असच्चिदानन्दस्वरूप है। अतएव इसका परमाश्रय सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म

ही हो सकता है। अन्यथा अनवस्थान्तदोष अनिवार्य है। निमित्तकारण कार्यका निर्माता होता है। अतएव उसका ज्ञानवान्, इच्छावान्, प्रयत्नवान् होना अनिवार्य है। पृथिव्यादि कार्यप्रपञ्चका निमित्तकारण सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् ही हो सकता है। सर्वोपादानकी सर्वव्यापकता भी अनिवार्य है। इसप्रकार, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, सच्चिदानन्द ब्रह्म जगत् का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण है। सर्वव्यापक सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मकी निमित्त तथा उपादानकारणता त्रिगुणमयी मायाके द्वारसे चरितार्थ है। कार्यकी सुख, दु:ख, मोहकता तथा प्रकाश, प्रवृत्ति, अवष्टम्भकतासे त्रिगुणमयी मायाशक्तिका अनुमान होता है।

सर्वव्यापक सर्वातीत सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म **कार्यकारणतातीत परब्रह्म** कहा जाता है। मायाशक्तिसमन्वित सच्चिदानन्दस्वरूप सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक सर्वेश्वर **कारणब्रह्म** कहा जाता है। पाञ्चभौतिक कार्यप्रपञ्चके रूपमें परिलक्षित और कार्यवर्गके नियामक ईश्वर **कार्यब्रह्म** कहा जाता है। आरोहक्रमसे पृथ्वीकी अपेक्षा जल, जलकी अपेक्षा तेज, तेजकी अपेक्षा वायु, वायुकी अपेक्षा आकाशका निर्विवाद उत्कर्ष है। साङ्ख्य, योग और वेदान्तप्रस्थानमें पृथ्वीका कारण जल, जलका कारण तेज, तेजका कारण वायु तथा वायुका कारण आकाश है। उपादेयरूप कार्यकी अपेक्षा उपादानकारणका उत्कर्ष स्वाभाविक है। कारण यह है कि कार्यकी अपेक्षा उपादान कारण निर्विशेष, सूक्ष्म, शुद्ध, विभु, आश्रय और प्रत्यक् होता है। अतएव पृथिवीप्रधान या पार्थिव शरीररूप अधिभूत, नासिकारूप अध्यात्म और पृथ्वीरूप अधिदैवके नियामककी अपेक्षा जलप्रधान या जलेज (वारुण) शरीररूप अधिभूत, रसनारूप अध्यात्म और वरुणरूप अधिदैवके नियामकका महत्त्व अधिक है। उसकी अपेक्षा तेज:प्रधान या तैजसशरीररूप अधिभूत, नेत्ररूप अध्यात्म और सूर्यरूप अधिदैवके नियामकका महत्त्व अधिक है। उसकी अपेक्षा वायुप्रधान या वायविक (वायवीय) शरीररूप अधिभूत, त्वक् - रूप अध्यात्म और वायुरूप अधिदैवके नियामकका महत्त्व अधिक है। उसकी अपेक्षा आकाशप्रधान या आकाशीय शरीररूप अधिभूत,

श्रोत्ररूप अध्यात्म और दिक् - रूप अधिदैवके नियामकका महत्त्व अधिक है। अथवा अवरोहक्रमसे प्रथम भूत आकाशके अधिदैव **दिशा**, द्वितीय भूत वायुके अधिदेव **विद्युत**, तृतीय भूत तेजके अधिदेव **सूर्य**, चतुर्थ भूत जलके अधिदेव **सोम** और पञ्चम भूत पृथिवीके अधिदेव **वाय**को मानना चाहिये।-

''आकाशं प्रथमं भूतं श्रोत्रमध्यात्ममुच्यते।।
अधिभूतं तथा शब्दो दिशस्तत्राधिदैवतम्।
द्वितीयं मारुतो भूतं त्वगध्यात्मं च विश्रुता।।
स्प्रष्टव्यमधिभूतं च विद्युत् तत्राधिदैवतम्।
तृतीयं ज्योतिरित्याहुश्चक्षुरध्यात्ममुच्यते।।
अधिभूतं ततो रूपं सूर्यस्तत्राधिदैवतम्।
चतुर्थमापो विज्ञेयं जिह्वा चाध्यात्ममुच्यते।।
अधिभूतं रसश्चात्र सोमस्तत्राधिदैवतम्।
पृथिवी पञ्चमं भूतं घ्राणश्चाध्यात्ममुच्यते।।
अधिभूतं तथा गन्धो वायुस्तत्राधिदैवतम्।
एषु पञ्चसु भूतेषु त्रिषु यश्च विधिः स्मृतः।। ''
(महाभारत - आश्वमेधिकपर्व ४२.१८-२३)

ऐसी स्थितिमें आकाशका अधिपति मानकर अपने इष्टदेवकी प्रधान आराधना और अनुगामी मानकर शेष चार भूतोंके अधिपतियोंकी आराधना अपेक्षित है। यह तथ्य इन्द्रयागमें इन्द्रकी, वरुणयागमें वरुणकी, रुद्रयागमें रुद्रकी, विष्णुयागमें विष्णुकी अथवा इन्द्रदेवके विवाहमें इन्द्रदेवकी, वरुणदेवके विवाहमें वरुणदेवकी, रुद्रदेवके विवाहमें रुद्रदेवकी और विष्णुदेवके विवाहमें विष्णुदेवकी प्रधानताके तुल्य चरितार्थ है।

''आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम्।
पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्।।''

विवक्षावशात् ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, शिव अथवा सदाशिवको पञ्चदेव माना जाता है -

''ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरः शिव एव च।
पञ्चधा पञ्चदेवत्यः प्रणवः परिपठ्यते।।''
(अथर्वशिखोपनिषत् २)

ध्यान रहे; रुद्र, ईश्वर और शिवरूप एक देवके त्रिरूप हैं। इनमें रुद्रको शिव, ईश्वरको शक्ति तथा शिवको गणेश समझना चाहिये। कारण यह है कि शक्ति और गणेश शिवपरिवारके सदस्य हैं। सूर्य शिवके नेत्र हैं तथा विष्णु शिवके आत्मस्वरूप ही हैं। पञ्च देवोपासक अपने - अपने उपास्यको अवरोहक्रमसे प्रथम भूत आकाशके अन्तर्यामी अधिदैवरूपसे स्वीकार कर उनकी महत्ता ख्यापित करते हुए आराधना करते हैं। उक्त रीतिसे पाँचों देव आकाशके नियामक और प्रकाशक अन्तर्यामी - अधिदेव माने जा सकते हैं, तथापि विवक्षावशात् प्रसिद्ध क्रमके अनुसार पृथ्वीके शिव, जलके गणेश, तेजके शक्ति, वायुके सूर्य और आकाशके विष्णु नियामक प्रकाशक प्रेरक अधिदेव हैं। -

''आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः।।''
(कापिलतन्त्र)

विवक्षावशात् आकाशके शिव, वायुके शक्ति, अग्निके रवि, जलके हरि और पृथ्वीके गणेश प्रकाशक और नियामक अधिदैव हैं। -

''शिवः खमनिलश्शक्ती रविरग्निर्जलं हरिः।
महो गणेशः सम्प्रोक्तः विश्वमेतद्वयं नुमः।। ''

व्यष्टि, समष्टि प्राण तथा वायुके योगसे ब्रह्माकी सूत्रात्मा तथा बुद्धि तथा महत् के योगसे हिरण्यगर्भ संज्ञा है। अतः वायुके नियामक सूर्यको हिरण्यगर्भात्मक ब्रह्मा समझना चाहिये। विवक्षावशात् यह भी कहा जाता है कि पृथ्वीके ब्रह्मा, जलके विष्णु, तेजके रुद्र, वायुके ईश्वर तथा आकाशमण्डलके सदाशिव देवता हैं । -

चतुरस्रं धरण्यादौ ब्रह्मा तत्राधिदेवता।
अर्द्धचन्द्राकृति जलं विष्णुस्तंस्याधिदेवता।।

त्रिकोणमण्डलं वह्नी रुद्रस्तस्याधिदेवता।
वायोर्बिम्बं तु षट्कोणमीश्वरोऽस्याधिदेवता।।
आकाशमण्डलं वृत्तं देवताऽस्य सदाशिवः।
(योगशिखोपनिषत् १,१७६-१७७.१/२)

पञ्चब्रह्मोपनिषत् के अनुसार उत्पत्ति, स्थिति, संहार, निग्रह और अनुग्रह एवम् पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशसे सम्बद्ध क्रमशः सद्योजात, अघोर, वामदेव, तत्पुरुष और ईशान संज्ञक पञ्च देव हैं। शैवप्रस्थानकी इस गणनाको पूर्ववत् ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति और गणपतिरूप समझना चाहिये। -

''पञ्चब्रह्म परं विद्यात्सद्योजातादिपूर्वकम्।
दृश्यते श्रूयते यच्च पञ्चब्रह्मात्मकं स्वयम्।।
पञ्चधा वर्तमानं तं ब्रह्मकार्यमिति स्मृतम्।
ब्रह्मकार्यमिति ज्ञात्वा ईशानं प्रतिपद्यते।।
पञ्चब्रह्मात्मकं सर्वं स्वात्मनि प्रविलाप्य च।
सोऽहमस्मीति जानीयाद्विद्वान्ब्रह्माऽमृतो भवेत्।।''
(पञ्चब्रह्मोपनिषत् २१ - २३)

''**ब्रह्मकार्यमिति ज्ञात्वा** '' (२२) की उक्तिसे स्पष्ट ही **कार्यब्रह्म**का प्रतिपादन किया गया है।

वैष्णवप्रस्थानमें सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान (/निग्रह) और अनुसम्मत (अनुग्रह) - कर्ता भगवान् नारायणको माना गया है। नारायणसंज्ञक विष्णुके क्रमशः आरोहक्रमसे अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, सङ्कर्षण; वासुदेव चतुर्व्यूह हैं। अभिप्राय यह है कि **अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, सङ्कर्षण, वासुदेव तथा नारायण** सृष्टि आदि पञ्चकृत्योंके निर्वाहक हैं। -

''सृष्टिः स्थितिश्च संहारतिरोधानानुसम्मतम्।
पञ्चकृत्यस्य कर्त्तारं नारायणमनामयम्।।''
(नारायणपूर्वतापनीयोपनिषत्)

''वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम्।
अनिरुद्ध इति ब्रह्मन् मूर्तिर्व्यूहेऽभिधीयते।।
(श्रीमद्भागवत १२.११.२१)

शाक्तप्रस्थानमें पञ्चकृत्यरूपा परमेश्वरीके पाँच अवतार हैं। सृष्टिरूपा **सरस्वती** हैं। स्थितिरूपा **महालक्ष्मी** हैं। संहाररूपा **रुद्राणी** हैं। तिरोधानकरी **पार्वती** हैं। अनुग्रहरूपा **उमा** हैं। -

''सृष्टिरूपा सरस्वती भवति। स्थितिरूपा महालक्ष्मीर्भवति। संहाररूपा रुद्राणी भवति। तिरोधानकरी पार्वती भवति। अनुग्रहरूपा उमा भवति।'' (नारायणपूर्वतापिनीयोपनिषत् २)

शाक्तप्रस्थानमें शक्तिस्वरूपा उमा स्वयं पञ्चदेवोंमें शेष चार देवोंके रूपमें व्यक्त हैं। प्रभा, प्रज्ञा, सन्ध्या, सावित्री उमाकी विशेष विभूति हैं। पञ्चदेवोंमें आदित्य, गणनाथ, देवी, रुद्र और केशव हैं। अथवा सूर्य, **सोम**, उमा, शिव और जगन्नाथ हैं। **सौरप्रस्थान**में उत्पत्ति, स्थिति, संहृति, निग्रह और अनुग्रहकर्ता क्रमशः आदित्य, भास्कर, भानु, रवि और दिवाकर हैं।।

**''आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम्।
पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्।।''
(शब्दकल्पद्रुम)**

**''सूर्यः शिवो जगन्नाथः सोमः साक्षादुमा स्वयम्।
आदित्यं भास्करं भानुं रविं देवं दिवाकरम्।।
उमां प्रभां तथा प्रज्ञां सन्ध्यां सावित्रीमेव च।।''
(लिङ्गपुराण उ० अ०१९.)**

गाणपत्यप्रस्थानमें अष्टधाप्रकृतिके अभिप्रायसे कार्यात्मिका पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहम् और महत् -संज्ञक प्रकृतिविकृतिकेयोगसे कार्यब्रह्मके सात प्रभेद हैं। विवक्षावशात् मूलप्रकृतिके योगसे कारण ब्रह्मका नाम गणेश है। गणेश महत् से पृथ्वी -पर्यन्त सात गणोंके ईश अर्थात् नियामक हैं। वे प्रकृतिसङ्गविमुक्त होनेके कारण कार्यकारणातीत ज्ञानस्वरूपनिर्वाणरूप हैं। अष्टधा प्रकृतिके नियामक होनेके कारण ज्ञानप्रद तथा निर्वाणप्रद - **गणेश** हैं। पृथ्वीके योगसे गणेशकी एकदन्त संज्ञा है। **एक प्रधानवाचक और दन्त सर्वाधिक बलसूचक है।** पृथ्वी शब्द,स्पर्श, रूप, रस और गन्धरूप सर्व विशेषताओंसे सम्पन्न होनेके कारण प्रधान है - **''भूमिरापस्तथा वायुरग्निराकाशमेव च। गुणोत्तराणि सर्वाणि तेषां भूमिः प्रधानतः।।''**

(**महा.उद्योगपर्व ५.४**)। विशेषताकी पराकाष्ठा और चरमकार्य होनेसे पृथ्वी सर्वप्रधान बल है। उसके नियामक होनेसे गणेश **एकदन्त** हैं। जलके योगसे गणेश हेरम्ब हैं। **हे** - का अर्थ अभावग्रस्त दीन है। **रम्ब** -का अर्थ पालन - पोषण है। **हेरम्ब**का अर्थ जीवनप्रद है। जल जीवन है। उसके योगसे गणेश **हेरम्ब** हैं। अन्धकारनिमित्तक कण्टकादि वघ्नोंका शमन अग्नि और तेजसे होता है। अतः अग्नि या तेजके योगसे गणेश **विघ्ननायक** हैं। वायुको संवर्ग कहते हैं। वह विद्युत् आदिका शोषक है। अग्नि भी बाह्याभ्यन्तर वायुके योगसे अन्नादिका पाचक है। अतः वायु लम्बोदर है। उसके योगसे गणेशको **लम्बोदर** कहते हैं। आकाश कर्णगोचर शब्दका आश्रय होनेसे शूर्पकर्ण है। गणेश आकाशयोगसे **शूर्पकर्ण** हैं। गगनका जनक होनेसे अहम् गजवक्त्र है। उसके योगसे गणेश **गजवक्त्र** हैं। स्वामिकार्तिकेयके अग्रज गुहाग्रज हैं। दर्शनप्रस्थानमें अव्यक्त या मायाका नाम गुहा या गुहाग्र है। उससे समुत्पन्न महत् गुहाग्रज है। उसके योगसे गणेश **गुहाग्रज** हैं। -

"गणेशमेकदन्तं च हेरम्बं विघ्ननायकम्।
लम्बोदरं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं गुहाग्रजम्।।"
(ब्रह्मवैवर्तपुराण ३.४४.८५)

शिवपुराणके अनुसार उत्पत्ति नामक कृत्यके सम्पादनमें पृथ्वी, स्थितिनामक कृत्यके सम्पादनमें जल, संहृतिनामक कृत्यके सम्पादनमें तेज, निग्रहनामक कृत्यके सम्पादनमें वायु और अनुग्रहनामक कृत्यके सम्पादनमें आकाश युक्त दृष्टान्त है। अतः गाणपत्यप्रस्थानमें क्रमशः पृथिव्यादि पञ्चभूतोंसे सम्बद्ध एकदन्त, हेरम्ब, विघ्ननायक, लम्बोदर और शूर्पकर्ण उत्पत्त्यादि पञ्चकृत्योंके निर्वाहक हैं।

इस प्रकार, कार्यवर्गके नियामकका नाम **कार्यब्रह्म** है। मायारूपा कारणके नियामकका नाम **कारणब्रह्म** है। केवल सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मका नाम **कार्यकारणातीत परब्रह्म** है। **पञ्चदेव कार्यब्रह्म, कारणब्रह्म और कार्यकारणातीत परब्रह्मरूपसे एक ही हैं, केवल लीलाविग्रहकी दृष्टिसे नाम, रूप, लीला, धामगत इनमें विभेद है।**

विवक्षावशात् उत्पत्ति,स्थिति ,संहार, निग्रह तथा अनुग्रह नामक कृत्योंमें निग्रहका संहारमें और अनुग्रहका स्थितिमें अन्तर्भावकर उत्पत्ति, स्थिति ,संहाररूप तीन कृत्योंको ही माना जाता है। इस दृष्टिसे वेदान्तवेद्य परब्रह्म सच्चिदानन्दकी आत्मार्था सृष्टिमें सन्निहित सत्प्रधाना **सन्धिनी** शक्ति, चित्प्रधाना **संवित्** - शक्ति तथा आनन्दप्रधाना **ह्लादिनी** शक्ति है और जीवार्था सृष्टिमें सन्निहित सत्प्रधाना **तामसा**, चित्प्रधाना **सात्त्विकी** एवम् आनन्दप्रधाना **राजसी** - शक्ति है। **सन्धिनी तथा तमस् से रूपकी, संवित् तथा सत्त्वसे नामकी तथा ह्लादिनी तथा रजस् से क्रियाकी निष्पत्ति होती है। नाम, रूप, लीला ओर धाममें रूप तथा धाममें समानता है। लीला - नाम, रूप और क्रियाका समवेत स्वरूप है। स्वरूपकी प्रकारान्तर अभिव्यक्ति रूप है। रूपकी ख्यापक सामग्री नाम है। स्वरूपख्यापन क्रिया है। आरोहक्रमसे चरम रूप स्वरूप है अर्थात् घटादिका ऊर्ध्वमुख चरम रूप सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म है। नाम और क्रिया स्पन्द है। स्वरूप परब्रह्म है। स्पन्द शब्दब्रह्म है। शब्दब्रह्म प्रकृति, प्रणव और लक्ष्मी है। -**

''महालक्ष्मीर्मूलप्रकृतिरिति " (नारायणपूर्वताप - नीयोपनिषत् २), ''सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता । प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिन: ।।" (सीतोपनिषत् २)।
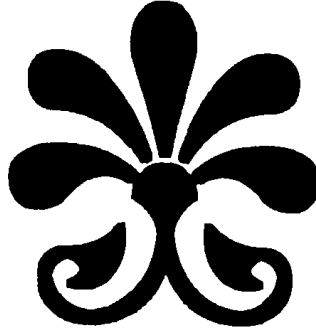
८.अवतारप्रयोजन

वेदान्तप्रस्थानके अनुसार अव्यक्तका व्यक्त होना अवतार है। अविज्ञेय अव्यक्त है और विज्ञेय व्यक्त है। - " **यदविज्ञेयं तदव्यक्तम्।..**
....यद्व्यज्यते तदत्यक्तस्य व्यक्तत्वम्।। " **(अव्यक्तोपनिषत् १,३)।** जीव, जगत् और जगदीश्वर अचिन्त्य मायाशक्तिके योगसे सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्मकी अभिव्यक्ति मान्य हैं। अतएव तीनों ही ब्रह्मके अवतार हैं। यद्यपि ब्रह्म, ईश्वर, जीव, माया, जीवेश्वरभेद, माया और चिद्रूप ब्रह्मका योग -ये छह अनादि हैं, तथापि ईश्वर और जीव अनादिसिद्ध अवतार है। ब्रह्म सर्वाधिष्ठान है, अतः उसका उसके लिये कोई प्रयोजन नहीं। ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् हैं, अतः उनका उनके लिये कोई प्रयोजन नहीं। माया और मायिकप्रपञ्च अचित् होनेसे परार्थ हैं, अतः उनका उनके लिये कोई प्रयोजन नहीं। जीव (प्राणी) अल्पज्ञ तथा अल्पशक्तिमान् है, अतः ब्रह्म, ईश्वर, माया और जगत् से धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षरूप अभ्युदय और निःश्रेयससिद्धि उसका प्रयोजन है। जगत् से अर्थ, काम तथा धर्मकी सिद्धिरूपा भुक्ति और विरक्ति प्रयोजन है। ईश्वरसे उत्पत्ति, स्थिति, संहृति, निग्रह तथा अनुग्रह प्रयोजन है। षडैश्वर्यसम्पन्न ईश्वर

भगवान् है। भगवान्के अवतारसे जीवका प्रयोजन अर्थकामरूप भोगकी सिद्धि, भगवद्भक्ति तथा योगरूप समाधिकी सिद्धि और पूर्ण कृतार्थतारूप मोक्षकी सिद्धि है। भोग प्रेय है। मोक्ष श्रेय है। प्रेय और श्रेयोमार्गका द्वारभूत धर्म है। अधर्म धर्मका अवरोधक है। अधर्मके अभ्युत्थानसे समुद्भूत धर्मग्लानिका निवारण और धर्मग्नानिमें हेतुभूत अधर्मरूप अधर्मियोंका उन्मूलन तथा धर्मसिद्धिमें हेतुभूत सन्मार्गस्थ साधुओंका परित्राण भगवान् के अवतारका प्रयोजन है।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चतुर्वर्गकी सिद्धि , प्रशस्त राजसिंहासन (राजगद्दी, शासनतन्त्र) तथा व्यासपीठ (व्यासगद्दी)के अधीन है। राजगद्दी और व्यासगद्दीके शोधनके लिये भगवान्का अवतार अविवार्य है। अतएव शिवावतार भगवत्पाद श्रीशङ्कराचार्यके अनुसार व्यासगद्दीसे सम्बद्ध ब्राह्मणोंके ब्राह्मणत्वको सुस्थिरकर राजगद्दीसे सम्बद्ध क्षत्रियोंको क्षात्रधर्ममें प्रतिष्ठित करनेके लिये श्रीभगवान् का अवतार होता है। अत्यन्त उग्र अराजक तत्त्वोंका उन्मूलन और उद्धार तथा अराजक तत्त्वोंके उत्पातसे अत्यन्त उत्पीडित सज्जनोंका त्राण तथा आह्लादरूप परित्राण भगवान्के अवतार लिये बिना असम्भव है।

''योगो नष्टः परन्तप'' (गीता ४.२),''योगः प्रोक्तः पुरातनः'' (गीता ४.३), ''परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् '' (गीता ४.८) - इन भगवद्वचनोंके अनुशीलनसे लुप्तयोगरूप ज्ञानकी प्रस्थापना और साधुपरित्राण तथा दुष्टदलन श्रीहरिके अवतारका प्रयोजन है।

''यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत्।
भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै दीप्तमग्निमिवारणिः।।''
(महाभारतशान्तिपर्व ४७.२९)

''भौमब्रह्मरूप ब्राह्मण, वेद और यज्ञादिकी रक्षाके लिए जैसे अरणि प्रज्वलित अग्निको प्रकट करती है, वैसे ही देवकीदेवीने वसुदेवजीके तेजसे श्रीहरिको प्रकट किया ।''

यहाँ ध्यान रखनेकी आवश्यकता यह है कि सुषुप्तिके तुल्य महाप्रलय पुरुषार्थभूमि नहीं है। अतएव भगवान् अर्थ, धर्म, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थ चतुष्टयकी सिद्धिके लिये अकृतार्थ जीवोंको सर्गारम्भमें बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणसे युक्त जीवन प्रदान करते हैं तथा पाञ्च भौतिक प्रपञ्चकी रचना कर उन्हें कृतार्थ होनेका पूर्ण अवसर प्रदान करते हैं।

''बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् जनानामसृजत्प्रभुः।
मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च।।"
(श्रीमद्भागवत १०. ८७.२)

भगवान्का अवतार पुरुषार्थचतुष्टयकी द्रुतगतिसे सिद्धि और पुरुषार्थचतुष्टयके उपायभूत ब्रह्माण्डके पोषक और पृथिवीके धारक मानविन्दुओंकी रक्षा तथा तदर्थ प्रेरणाके लिये होता है। -

''गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपि चेश्वरः।
रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि।।"
(श्रीमद्भागवत ८. २४.५)

''विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना और अनुग्रहाशक्तिसम्पन्न सर्वेश्वर गौ, ब्राह्मण, सुर, साधु, वेद, धर्म और अर्थकी रक्षाके लिये श्रीविग्रह धारण करते हैं।।"

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः।।
(श्रीमद्भागवत १०. २९.१४)

'' हे नृप! अव्यय, अप्रमेय, निर्गुण और दिव्यातिदिव्य अचिन्त्य गुणगणनिलय भगवान् की अभिव्यक्ति (अवतार) का प्रयोजन मनुष्यादि प्राणियोंके निःश्रेयस (परम कल्याण) के लिये है।।"

अज, अनादि, अप्रमेय, अव्यय, निर्गुण ब्रह्म ब्रह्मादि देवशिरोमणियोंके लिये भी अदृश्य है। यह उसका सत्पुरुषोंपर अनुग्रह ही है कि वह भक्तवत्सलताके कारण स्वयंको अचिन्त्यलीलाशक्तिके योगसे सगुणसाकाररूपसे व्यक्त कर लेता है। अविद्या, काम, कर्मसे

अतीत सर्वेश्वर लीलापूर्वक जन्म लेता है, अत: उसका जन्म लेना दिव्य है। वह अपनी अविक्रिय विज्ञानघन अव्ययरूपताका समादर करता हुआ ही कर्म करता है, अत: उसका कर्म करना दिव्य है। उसके योगवैभवका प्रधान प्रयोजन अपने प्रति आस्था और अनुरक्तिकी प्रगाढ अभिव्यक्ति ही है -

''त्वं भावयोगपरिभावित हृत्सरोज
आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम्।
यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपु: प्रणयसे सदनुग्रहाय।।"
(श्रीमद्भागवत ३.९.११)

'' नाथ ! आपका मार्ग केवल गुणश्रवणसे ही जाना जाता है। आप भावयोगसे परिभावित हृदयकमलमें निवास करते हैं। पुण्यश्लोक प्रभो! रसिक भावुक जिस - जिस भावसे आपकी विशेष भावना करते हैं, उन सत्पुरुषोंपर अनुग्रह करनेके लिये आप वही - वही रूप धारण कर लेते हैं।"

''तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रिय:।।"
(श्रीमद्भागवत १.८.२०)''जब

''आत्मानात्मविवेकसम्पन्न परमहंस, मननशील मुनि और रागादिविरहित शमादिसम्पन्न सनकादिसरीखे अमलात्मा सन्त भी स्वरूप, शक्ति, वैभवसे अनन्त, अचिन्त्यमहिमामण्डित आपको नहीं जान पाते, तब आपकी भक्ति करनेकी भावनावाली , किन्तु देह - गेह, सगे - सम्बन्धियोंमें रची - पची हम स्त्रियाँ कैसे पहचान सकती हैं ? आप मुनियों और परमहंसोंके मनको भी अपने दिव्यातिदिव्य गुणगणोंसे समाकृष्टकर उन्हें भक्तियोग प्रदान करनेके लिये अवतीर्ण हैं।।"

श्रीमद्भगवद्गीताके चतुर्थ अध्यायके अनुसार मोक्षप्रद तत्त्वज्ञानरूप योगकी प्रतिष्ठा, धर्मसंस्थापन, दुष्टदलन और साधुपरित्राणके लिये होता

है। -

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।"
(श्रीमद्भगवद्गीता ४.७,८)

ध्यान रहे ; विरक्ति, भक्ति और भगवत्प्रबोधमें वेदोक्त कर्मोपासना और ज्ञानकाण्डका तात्पर्य सन्निहित है। तदनुकूल व्यासपीठ और शासनतन्त्र अपेक्षित है। तदर्थ मर्त्यशिक्षण मर्त्यावतारका प्रयोजन है। -

"मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभो:।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमत: स्व आत्मन:
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य।।"
(श्रीमद्भागवत ५.१९.५)

"प्रभो! आपका मर्त्यावतार केवल राक्षसोंके वधके लिये ही नहीं है। इसका मुख्य प्रयोजन तो मनुष्योंको शिक्षा देना है। अन्यथा आप सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् सर्वेश्वर आत्मारामको सीताजीके वियोगमें इतना दु:ख कैसे हो सकता था?।।"

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरि:।।
(श्रीमद्भागवत १.७.१०)

"मननशील, चिज्जडग्रन्थिभेदनसम्पन्न आत्माराम भगवान् की निष्कामभक्ति किया करते हैं। क्यों न हो, भगवान् के अप्राकृत दिव्यातिदिव्य गुणगण ही ऐसे अनुपम हैं जो गुणतीत परमहंसोंको भी अपनी ओर हठात् आकर्षित करते ह।।"

विश्वरूपप्रोक्त नारायणकवचके अनुशीलनसे मत्स्यादि अवतारोंकी उपयोगिताका परिज्ञान होता है। मत्स्यावतार जलजन्तुओंसे और वरुणपाशसे

रक्षा करनेवाले हैं। स्थल तथा नभमें वामनावतार रक्षा करनेवाले हैं। नृसिंहावतार वन, दुर्ग, रणादि दुर्गमस्थलमें रक्षा करनेवाले हैं। वराहावतार मार्गमें रक्षा करनेवाले हैं। परशुरामावतार पर्वतोंके शिखरोंपर रक्षा करनेवाले हैं। रामावतार प्रवासमें रक्षा करनेवाले हैं। नारायणावतार अभिचार और प्रमादसे रक्षा करनेवाले हैं। नरावतार गर्वसे रक्षा करनेवाले हैं। दत्तात्रेयावतार योगान्तरायसे रक्षा करनेवाले हैं। कपिलावतार कर्मबन्धसे रक्षा करनेवाले हैं। सनत्कुमार कामसे रक्षा करनेवाले हैं। हयग्रीव देवापराधसे रक्षा करनेवाले हैं। नारदावतार सेवापराधसे रक्षा करनेवाले हैं। कच्छपावतार नरकसे रक्षा करनेवाले हैं। धन्वन्तरि कुपथ्यसे रक्षा करनेवाले हैं। ऋषभावतार द्वन्द्वोंसे रक्षा करनेवाले हैं। यज्ञावतार लोकापवादसे रक्षा करनेवाले हैं। बलरामावतार मनुष्यकृत कष्टोंसे रक्षा करनेवाले हैं। शेषावतार क्रोधवशनामक सर्पसमुदायसे रक्षा करनेवाले हैं। व्यासावतार अज्ञानसे रक्षा करनेवाले हैं। बुद्धावतार पाखण्डियों और प्रमादसे रक्षा करनेवाले हैं। कल्किदेव कलिकालके दोषोंसे रक्षा करनेवाले हैं। केशव, गोविन्द, मधुसूदन, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, पद्मनाभ, श्रीहरि, जनार्दन, दामोदर तथा विश्वेश्वर अहर्निश रक्षा करनेवाले हैं। **(भागवत ६. ८.१२ -२२)**

श्रीकृष्णावतारका मुख्य प्रयोजन विश्वरक्षण तथा विशेषकर गोवंश और गोप तथा गोपियोंके दुःखोंका अपहरण तथा सर्वविध रक्षण है। -

"विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले।"
"व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम्।।"
(श्रीमद्भागवत १०. ३१.४, १८)

जीवनिष्ठ अविद्यादि क्लेषोंके अक्लिष्ट उपयोगके व्याजसे जीवोद्धार भगवान्के अवतारका प्रयोजन है। अवतारकालमें यशोदादि देवियोंमें श्रीकृष्णविषयक अनिष्टादिकी चिन्तारूपा प्रीतिविशिष्ट अविद्या वात्सल्यरसका ख्यापक है। गोपाङ्गनाओंमें '**कृष्णोऽहम**' की उद्भावनारूपा अस्मिता भवतारक है। सख्यभावान्विता गापियोंमें मदनमोहनके प्रति प्रीतिरूप रागकी पराकाष्ठा इतर रागका विस्मारक है। शिशुपालादिमें द्वेष और कंसादिमें अभिनिवेश भी तारक है।

''कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते।।''
(श्रीमद्भागवत १०.२९.१५)

अज्ञान, आवरण, संशय, विपर्यय और विपर्ययजन्य बौद्धिक धरातलपर प्राप्त अनुकूल और प्रतिकूल प्रभावका निवारण केवल अनुमेय ब्रह्मात्मतत्त्वके विज्ञानसे असम्भव है। अनुमित अग्निसे दाहादिरूप अर्थक्रियाकारिताकी असिद्धि सर्वविदित है। पृथिव्यादि कार्योंसे उसके स्रष्टा , नियामक और संहारक सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापकका अनुमान होता है। रूपोपलब्धि आदि क्रियाके अवलोकनसे नेत्रादि करणोंका अनुमान होता है। करणग्रामके अवलोकनसे प्रयोक्ता, द्रष्टा, उपलब्धाका अनुमान होता है। उपलब्धा आत्माके अवगमसे अननुभाव्य उपलब्धिस्वरूप आत्माके एक, विभु, स्वतःसिद्ध और अद्वितीय ब्रह्मका अनुमान होता है। किन्तु साधन चतुष्टयसम्पन्न साधकके प्रति श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुमुखनिगदित तत्त्वमस्यादिवाक्यजन्य वृत्त्यारूढ चैतन्यके स्फुरणरूप अवतरणसे अज्ञानावरणादिका सर्वथा विलोप सम्भव है। -

''सत्त्वं न चेद्धातरिदं निजं भवेद्विज्ञानमज्ञानभिदापमार्जनम्।
गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान् प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः।।''
(श्रीमद्भागवत १०.२.३५)

''प्रभो! आप सबके विधाता हैं। यदि आपका यह विशुद्ध सत्त्वनिमित्तक निज साक्षात् स्वरूप न हो, तो अज्ञान और उसके द्वारा होनेवाले भेदभावको नष्ट करनेवाला अपरोक्ष ज्ञान ही किसीको न हो। निःसन्देह यह सत्य है कि जगत् में दृष्टिगोचर त्रिगुण आपसे ही सत्ता, स्फूर्ति लाभ करते हैं। इन गुणोंकी प्रकाशक देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणरूप तथा पृथिव्यादि पञ्चभूतरूप प्रकाशक वृत्तियों (कार्यों)से आप केवल अनुमित होते हैं, न कि साक्षात् स्फुरित।।''
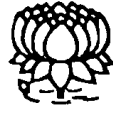
१.अवतारहेतु

प्रणवगत अ, उ और मकी तथा प्रकृतिगत सत्त्व,रजस् और तमस् की एकरूपता है। वाचक प्रतिपाद्यरूप वाच्यका और गुण निर्गुणका उपव्याख्यान होता है। उपव्याख्यानको उपाधि या अभिव्यञ्जक संस्थान कहते हैं। श्रीहरिके विविध अवतारमें अनुगत हेतु शब्द है। श्रीहरि निज इच्छासे अवतार लें या नारदादिके शापको अङ्गीकारकर अवतार लें या कश्यपादिको दिये गये वरदानके निमित्तसे अवतार लें, अवतारमें अनुगत हेतु शब्द ही होता है। यही कारण है कि सीता, गरुड, ब्रह्मादि शब्दब्रह्मात्मक हैं।"**प्रणवगरुडमारुह्य महाविष्णोः** " (त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषत् ५.१)। शब्द और शब्दार्थका पर्यवसान ज्ञान है। शब्दज्ञानके तुल्य घटज्ञानके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है। **शब्द और अर्थ** ज्ञानके प्रकारान्तर अभिव्यञ्जनमात्र हैं। आकाश वायु, तेज, जलादिसे संलग्न परिलक्षित होता है, तथापि आकाश इनसे अलिप्त है। पद्मपत्र स्वाश्रित जलसे अलिप्त ही रहता है। तद्वत् शब्द अर्थमें संलग्न परिलक्षित होता है, परन्तु अर्थ शब्दसे अलिप्त ही सिद्ध होता है। स्वप्रकाश शब्द ज्ञानात्मक है। ज्ञान ब्रह्मात्मतत्त्व है। अस्वप्रकाश शब्द अर्थाभिव्यञ्जक होता हुआ अर्थरूप है। मृद्घट - घटशब्दात्मक होता हुआ मृत्तिकामात्र है। मृत्तिका - पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशक्रमसे अव्यक्तसंज्ञक शब्दरूप और ब्रह्मात्मस्वरूप है। - " **वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् .... त्रीणिरूपाणीत्येव सत्यम्" (छान्दोग्योपनिषत् ६.१. ४, ६.४.२)**, "**सदेव सत्यम्" (पैङ्गी उपनिषत्)** । अतएव अव्यक्तसंज्ञक सीता, रुक्मिणी आदि लक्ष्मीरूपा मूलप्रकृति प्रणवात्मिका हैं। श्रीराम, कृष्ण, अर्द्धतन्मात्रात्मक तुरीयकल्प हैं। बलरामसंज्ञक संकर्षण तथा लक्ष्मण प्रणवगत **अ** -

काराक्षरसम्भूत वैश्वानररूप हैं। प्रद्युम्न तथा शत्रुघ्न प्रणवगत उकाराक्षरसमुद्भूत हिरण्यगर्भात्मक हैं। अनिरुद्ध तथा भरत ओङ्कारगत मकारसमुद्भूत प्रबुद्ध प्राज्ञकल्प हैं। -

"एकमेवाद्वयं ब्रह्म मायया तु चतुष्टयम् ।। रोहिणीतनयो रामो अकाराक्षरसम्भवः। तैजसात्मकः प्रद्युम्न उकाराक्षरसम्भवः।। प्राज्ञात्मकोऽनिरुद्धो वै मकाराक्षरसम्भवः। अर्द्धमात्रात्मकः कृष्णो यस्मिन्विश्वं प्रतिष्ठितम्।। कृष्णात्मिका जगत्कर्त्री मूलप्रकृतिरूपिणी।।" (गोपालोत्तरतापिन्युपनिषत् १७) , "अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः। उकाराक्षरसम्भूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः।। प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसम्भवः। अर्द्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः ।। श्रीरामसान्निध्य - वशाज्जगदानन्ददायिनी। उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम्।। सा सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता। प्रणवत्वात्प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः।।" (श्रीरामोत्तरतापिन्युपनिषत् १. १ -४)

यही कारण है कि शब्दब्रह्ममें निष्णात परब्रह्मको प्राप्त होता है -

" द्वे ब्रह्मणी हि मन्तव्ये शब्दब्रह्म परं च यत्।
(द्वे विद्ये वेदितव्ये तु शब्दब्रह्म परं च यत्।)
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।।"
(त्रिपुरातापिन्युपनिषत् ५.१७, ब्रह्मबिन्दूपनिषत् १७)

ध्यान रहे, रामावतारमें शेषावतार लक्ष्मणजी यद्यपि शत्रुघ्नजीसे बड़े थे, तथापि दोनों युग्म होनेके कारण गर्भमें प्रथम प्रविष्टका लोकमें पश्चात् जन्मकी दृष्टिसे उन्हें दर्शन परिप्रेक्ष्यमें अनुज मानकर ओङ्कारगत अकारसमुद्भूत विश्व या वैश्वानर माना गया है। कृष्णावतारमें शेषावतार श्रीबलराम अग्रज थे। देवकीजीके गर्भमें भी उनका प्रथम प्रवेश ही था। योगमायाके द्वारा उनका कर्षणकर रोहिणीके गर्भमें प्रवेश किया गया, अतः उनका नाम सङ्कर्षण हुआ। वे प्रद्युम्नजी तथा प्रद्युम्नपुत्र अनिरुद्धजीसे तो श्रेष्ठ थे ही। महाभारतादिमें तुरीयकल्प शेषी श्रीकृष्णको तथा शेषात्मक

बलदेवजीको प्राज्ञकल्प, प्रद्युम्नजीको हिरण्यगर्भात्मक तैजसकल्प और अनिरुद्धजीको वैश्वानरात्मक विश्वकल्प दर्शाया गया है। प्रकृत सन्दर्भमें और महाभारतादिमें रामावतार तथा कृष्णावतारमें एकरूपता दर्शानेके लिये शेषावतार श्रीलक्ष्मण तथा बलरामजीको ओङ्कारगत अकारात्मक विश्वरूप कहा गया है। प्रकरणका तात्पर्य प्रणवकी अ, उ, म् और अमात्रसंज्ञक अर्द्धतन्मात्रा तथा पुरुषके पादस्वरूप वैश्वानर, तैजस, प्राज्ञेश्वर और तुरीयब्रह्ममें एकरूपता, परब्रह्माश्रित शब्दब्रह्मकी जगत्कारण प्रकृतिरूपता और ब्रह्माधिष्ठित शब्दब्रह्मात्मक प्रणवकी विवर्तोपादानकारणता एवम् चतुर्व्यूहकी लोकोत्तर उत्कृष्टताके ख्यापनमें है।

❋ १०.अवतारकला

भगवान्‌के कलावतार भी मन्त्राक्षररूप ही होते हैं। उदाहरणार्थ "**ॐ नमो नारायणाय स्वाहा**" - दशाक्षर नारायण - मन्त्रान्तर्गत क्रमशः प्रणवादि दश अक्षरके **श्रीमत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि** अथवा **मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र, बलराम, कृष्ण और कल्की** अथवा **हंस, कूर्म, मत्स्य, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, सात्वत (कृष्ण/बलराम) और कल्कि -ये दशावतार हैं। जरा (ज्येष्ठा), पालिनिका, शान्ति, ईश्वरी, रति, कामिका, वरदा, ह्लादिनी, प्रीति और दीर्घा - ये श्रीहरिके दशकलात्मक अवतार हैं। टं से नं पर्यन्त - मन्त्रमाता मात्रिकासे सम्बद्ध ये कला हैं। -**

"जरा पालिनिका शान्तिरीश्वरी रतिकामिका।
वरदा ह्लादिनी प्रीतिर्दीर्घा दशकला हरेः।।"

नारायणादवतारा मन्त्ररूपा जायन्ते। ॐ नमो नारायणाय स्वाहा। एवं दशाक्षरो मन्त्रो भवति। तत्र प्रथमो मत्स्यावतारः। द्वितीयः कूर्मः। तृतीयो वराहः। चतुर्थो नरसिंहः। पञ्चमो वामनः। षष्ठो जामदग्निः। सप्तमो रामचन्द्रः। अष्टमः कृष्णः परमात्मा। नवमो बुद्धावतारः। दशमः कल्किर्जनार्दनः। (नारायणपूर्वतापिनीयोपनिषत् ५)

"शृणु नारद तत्त्वेन प्रादुर्भावान् महामते।
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहश्च वामनः।।
रामो रामश्च रामश्च कृष्णः कल्की च ते दश।"
(महाभारत शान्तिपर्व ३३९ दा० ७६ १,२)

"हंसः कूर्मश्च मत्स्यश्च प्रादुर्भावा द्विजोत्तम।।
वराहो नरसिंहश्च वामनो राम एव च।
रामो दाशरथिश्चैव सात्वतः कल्किरेव च।।"
(महाभारत शान्तिपर्व ३३९.१०३,१०४)

उक्त रीतिसे प्रकृतिरूपा प्रणवात्मिका भगवान् की कला होती है। उदाहरणार्थ "**ॐ नमो नारायणाय**" यह अष्टाक्षरमन्त्र है। केवल ओङ्कार भी अकार, उकार, मकार, नाद, बिन्दु, कला, अनुसन्धान और ध्यान - अष्टविध होता है। अकार सद्योजातस्वरूप होता है। उकार वामदेवस्वरूप होता है। मकार अघोरस्वरूप होता है। नाद तत्पुरुषस्वरूप होता है। बिन्दु ईशानस्वरूप होता है। कला व्यापकस्वरूप होता है। अनुसन्धान नित्यस्वरूप होता है। ध्यान ब्रह्मस्वरूप होता है। पृथिवी, जल, तेज, वायु, व्योम, चन्द्रमा, सूर्य और पुरुषरूप यजमानसंज्ञक सर्वव्यापक अष्टाक्षर अष्टमूर्ति है।-

"ॐ नमो नारायणाय इत्याष्टाक्षरो मन्त्रः।। अकारोकारमकारनादबिन्दुकलानुसन्धानध्यानाष्टविधा अष्टाक्षरं भवति। अकारः सद्योजातो भवति। उकारो वामदेवः। अघोरो मकारो भवति। तत्पुरुषो नादः। बिन्दुरीशानः। कला व्यापको भवति। अनुसन्धानो नित्यः। ध्यानस्वरूपं ब्रह्म। सर्वव्यापकोऽष्टाक्षरः।।"

"भूमिरापस्तथा तेजो वायुर्व्योम च चन्द्रमाः।
सूर्यः पुमांस्तथा चेति मूर्तयश्चाष्ट कीर्तिता.।।"
(नारायणपूर्वोत्तरतापिनीयोपनिषत्)

गर्गसंहिताके अनुसार श्रीहरिके अंशाश, अंश, आवेश, कला, पूर्ण और पूर्णतम - ये छह प्रकारके अवतार माने गये हैं। महर्षि मरीचि आदि अंशाशावतार माने गये हैं। ब्रह्मादिदेवशिरोमणि अंशावतार माने गये हैं। श्रीकपिल, कूर्मादि कलावतार माने गये हैं। श्रीपरशुरामादि आवेशावतार माने गये हैं। श्रीनृसिंह, राम, श्वेतद्वीपाधिपति हरि, वैकुण्ठ, यज्ञ, नरनारायण पूर्णावतार माने गये हैं। श्रीकृष्णचन्द्र पूर्णतम पुरुषोत्तमोत्तमावतार माने गये हैं। -

"अंशांशोऽशस्तथावेशः कला पूर्णः प्रकथ्यते।
व्यासाद्यैश्च स्मृतः षष्ठः परिपूर्णतमः स्वयम्।।"
(श्रीगर्गसंहिता १.१६)

ब्रह्म निर्गुण, निष्कल, निष्क्रिय, निर्विकल्प, निरञ्जन, निरवद्य, शान्त और सूक्ष्म है। - "**निर्गुणं निष्क्रियं सूक्ष्मं निर्विकल्पं निरञ्जनम्।**" (**अध्यात्मोपनिषत् ६२**), "**निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्**" (**श्वेताश्वतरोपनिषत् ६. १९**);तथापि त्रिगुणमयी मायाके योगसे उसे सकल भी कहा जाता है। ब्रह्मके अभिव्यञ्जक और अभिव्यक्त स्वरूपका नाम **कला** है। अभिप्राय यह है कि ब्रह्मशक्ति और उसके योगसे ब्रह्मके अभिव्यक्तरूपका नाम **कला** है। **प्रश्नोपनिषत्** के अनुसार पुरुष (ब्रह्मात्मतत्त्व) षोडशकला सम्पन्न है। " **षोडशकलं भारद्वाज पुरुषं वेत्थ। .... स प्राणमसृजत। प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम च।।" (६.४)।** - प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक तथा नाम - ये षोडश कला हैं। प्राणरूप अव्याकृत, महदात्मिका श्रद्धा, सूक्ष्म तथा स्थूलभेदसे दश भूत, दश इन्द्रिय और अहम् सहित मन - ये साङ्ख्यशैलीमें अचित् पदार्थके चौबीस प्रभेद हैं। मन्त्र तथा कर्मका अन्तर्भाव महत् (बुद्धि) अहम् तथा मनमें है। नामका अन्तर्भाव वाक् नामक कर्मेन्द्रियमें है। लोक, तप, वीर्य और अन्नका अन्तर्भाव पञ्च भूतात्मक शरीरमें है। इस प्रकार, षोडश **कला**का अर्थ प्रकृति तथा प्राकृत पदार्थ है, जो कि आत्माधिष्ठित होनेसे आत्मस्वरूप ही हैं। अभिप्राय यह है कि **जो कुछ आत्माधिष्ठित है, वह कलापदवाच्य है।**

चन्द्रमाकी सोलहवीं अमा नामकी सोमात्मिका कला उसके अविर्भाव और तिरोभावक्रमचक्रमें हेतु है। तद्वत् जीवभावापन्न पुरुषके अविर्भाव और तिरोभावक्रमचक्रमें उसकी सोलहवीं कला प्रकृति ही हेतु है। प्रकृति द्योतनशील प्राणकला, मन - बुद्धि - चित्त और अहम् - कला तथा दशविध इन्द्रियकलाके नियमन और प्रवर्तनमें समर्थ है। उसके विलोपका नाम ही पुरुषका **मोक्ष** है ।

''षोडशी तु कला सूक्ष्मा स सोम उपधार्यताम्।
न तूपयुज्यते देवैर्देवानुपयुनक्ति सा।।
एतामक्षपयित्वा हि जायते नृपसत्तम।
सा ह्यस्य प्रकृतिर्दृष्टा तत्क्षयान्मोक्ष उच्यते।।''
(महाभारतशान्तिपर्व ३०४. ६.७)

प्रकृति परमेश्वरकी माया है। चिद्रूप सर्वेश्वर स्वयंसे अधिष्ठित अचेतना प्रकृतिको वशमें रखते हुए ही सर्गादि कृत्योंका निर्वाह करते हैं तथा अवतार लेते हैं। -

''अचेतना चैव मता प्रकृतिश्चापि पार्थिव।
एतेनाधिष्ठिता चैव सृजते संहरत्यपि।।''
(महाभारतशान्तिपर्व ३१४.१२)

''प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ।।''
''मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।।''
(श्रीमद्भगवद्गीता ९. ८,१०)

''अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।।
(श्रीमद्भगवद्गीता ४. ६)

इस सन्दर्भमें चन्द्रवंशसमुत्पन्न चन्द्रतुल्य श्रीकृष्णकी षोडशकलासम्पन्नता और सूर्यवंशसमुत्पन्न सूर्यतुल्य श्रीरामकी द्वादशकलासम्पन्नताका रहस्य भी समझना चाहिये । चन्द्रकी अमृता, मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति, धृति, शशिनी , चन्द्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अङ्गदा, पूर्णा और पूर्णामृता -षोडश कला क्रमशः अ, आ, इ, ई,उ, ऊ,ऋ,ॠ, लृ,लॄ,ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः - संज्ञक स्वरवर्णघटित हैं। सोम रसात्मक और प्रकाशात्मक होनेसे अर्थात् सत्त्वगुणात्मक हैं, अतएव सत्त्वपरिपाकरूप ये कलाएँ हैं। अन्न, प्राण, मन, विज्ञान, आनन्द (स्थूल, सूक्ष्म, कारणरूप त्रिविध शरीर), अतिशायिनी

(देहेन्द्रियादिगत लोकोत्तर चमत्कृति), विपरिणामिनी, संक्रामिणी (परकायाप्रवेशादि), प्रभ्वी (कायव्यूहरचनादि), कुण्ठिनी (गरल, रिपु, सिन्धु, अग्नि, इन्द्रादिके प्रभावका स्तम्भन), विकासिनी (महिमादि सिद्धि), मर्यादिनी (निर्धूम अग्निको धूमयुक्त, अरजस्वलाको रजस्वला, इन्द्रको अजगर आदि करनेकी वाक् - सिद्धि), संह्लादिनी (स्थावर - जङ्गममें लोकोत्तर उत्कर्षकी क्षमता), आह्लादिनी (निर्विकार आनन्दोत्कर्ष), परिपूर्णा (शुद्ध सत्त्वोत्कर्ष) और स्वरूपावस्थिति (मुक्ति) - संज्ञक षोडश कला भी सत्त्वपरिपाकरूपा हैं। इसी प्रकार जैमिन्युपनिषत्के अनुसार भद्र (भजनीयता), समाप्ति (गुणोंकी पराकाष्ठा), आभूति (प्रपञ्चोत्पादन), संभूति (संरक्षा), भूत (संहार), सर्व (पूर्णता, उपादानता), रूप (इन्द्रियजन्य अनुभूतिका आधार, अलिप्त), अपरिमित (देश, काल, वस्तुसे अपरिच्छिन्न), श्री (आकर्षणकेन्द्र), यश (प्रशंसा), नाम (प्रतिष्ठा), उग्र (उद्बुद्ध), सजात (शक्तिसंस्थान), पय (जीवनाधार), महीय (महिमान्वित), रस (आनन्दोल्लास) - संज्ञक षोडश कलाएँ सत्त्वपरिपाकरूपा हैं। -

"षोडश कलं वै ब्रह्म "(जैमिन्युपनिषत् ३ . २८ .८),स हैवं षोडशधा आत्मानं विकृत्य सार्धं समैत" (जैमिन्युपनिषत् १. ४८ .७), " स षोडशधा आत्मानं व्यकुरुत। भद्रं च, समाप्तिश्च, आभूतिश्च, सम्भूतिश्च, भूतञ्च, सर्वञ्च, रूपञ्च, अपरिमितश्च, श्रीश्च, यशश्च, नाम च, अग्रञ्च, सजातश्च, पयश्च, महीया च, रसश्च। (जैमिन्युपनिषत् १. ४६ .२)।

तन्त्रोंमें सूर्यदेवकी कं, भं तपिनी, खं बं तापिनी, गं फं धूम्रा, घं पं मरीची, ङं नं ज्वालिनी, चं धं रुचि, छं दं सुषुम्णा, जं थं भोगदा, झं तं विश्वा, ञं णं बोधिनी, टं ढं धारिणी और ठं डं वर्णबीजघटित कला सत्त्वात्मक तेजके विलासभूत हैं। कसे ठ और विलोमक्रमसे **भ** से **ठ** अर्थात् **कसे भ पर्यन्त** चौबीस वर्णोका सन्निवेश प्रकारान्तरसे सूर्यकी चौबीस कलाओंको द्योतित करते हैं। **क से ञ पर्यन्त** सृष्टि, ऋद्धि, स्मृति, मेधा, कान्ति, लक्ष्मी, द्युति, स्थिरा, स्थिति और सिद्धि - सत्त्वोत्कर्षसूचक दश **ब्रह्मकला**

(ब्रह्माजीकी कला) हैं। शूरता, ईर्ष्या, इच्छा, उग्रता, चिन्ता, मत्सरता, निन्दा, तृष्णा, माया, शठता -रजोगुणके उत्कर्षसूचक दश **ब्रह्मकला** हैं। **पसे शपर्यन्त** तीक्ष्णा, रौद्री , भया, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, क्रोधिनी, क्रिया, उद्गारी और मृत्यु -तमोगुणकी प्रगल्भतासे दश **रुद्रकला** हैं। उद्रिक्त सत्त्वके योगसे अभिव्यक्त प्रकाशशीलता, प्रीति, क्षमा, धृति, अहिंसा, समता, सत्यशीलता, अनसूया, लज्जा, तितिक्षा, दया, तुष्टि, साधुवृत्तिता, शुचिता, दक्षता, अपरिक्षतधर्मता - असे अः- पर्यन्त षोडश **सदाशिवकला हैं**। सदाशिवकलामें ही गणपति तथा शक्तिकी कलाएँ सन्निहित हैं। निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति, इन्धिका, दीपिका, रेचिका, मोचिका, परा, सूक्ष्मा, सूक्ष्मामृता, ज्ञाना, ज्ञानामृता, आप्यायिनी, व्यापिनी और व्योमरूपा सदाशिवकी षोडशकला प्रसिद्ध हैं।

विवक्षावशात् इस सन्दर्भमें पौर्वापर्यप्रसङ्ख्यानरूप परस्परानुप्रवेशन्याय (कारणका कार्यमें या कार्यका कारणमें अन्तर्भावरूप अनुप्रवेश नियम) का आलम्बन अपेक्षित है। -

''**परस्परानुप्रवेशात् तत्त्वानां पुरुषर्षभ।**
पौर्वापर्यप्रसङ्ख्यानं यथावक्तृर्विवक्षितम्।। ''
(श्रीमद्भागवत ११. २२.७)

'' पुरुषशिरोमणे! **तत्त्वोंका एक - दूसरेमें अनुप्रवेश है। अतएव वक्ता तत्त्वोंकी जितनी सङ्ख्या बताना चाहता है, उसके अनुसार कारणको कार्यमें अथवा कार्यको कारणमें सम्मिलितकर अपनी इच्छित सङ्ख्या सिद्ध कर लेता है।।** ''

उक्त रीतिसे **कलासङ्ख्याकी दृष्टिसे देवोंमें उत्कर्षापकर्ष असम्भव है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश क्रमशः रजस्,सत्त्व तथा तमस् के नियामक और प्रकाशक होनेसे क्रमशः सत् , चित्, आनन्दस्वरूप निर्गुण हैं। अतएव त्रिदेवमें विभेद तथा उत्कर्षापकर्ष भी औपचारिक है, वास्तविक नहीं।**

सत्त्व, रजस्, तमस्, महत्, अहम्, पञ्च भूत, मन और इन्द्रियरूप

द्वादशतत्त्वसे सूर्यदेवकी बारह कला सिद्ध होती हैं। सत्त्व, रजस्, तमस् की साम्यावस्था त्रिगुणमयी प्रकृति है। पञ्च भूत सूक्ष्म और स्थूल भेदसे दश सिद्ध होते हैं। इन्द्रियोंके दश प्रभेद हैं। इसप्रकार, प्रकृति,महत्, अहम्, दश भूत, मन और दश इन्द्रिय - साङ्ख्योक्त चौबीस तत्त्व सूर्यदेवकी बारह कलामें सन्निहित हैं। अ, इ, उ , ऋ, लृ - पञ्च मूल स्वर हैं। ं , : - अनुस्वार और विसर्ग सहित सप्त स्वर हैं। कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग -पाँच व्यञ्जन वर्ग हैं। इस प्रकार, स्वर और व्यञ्जनरूप बारह वर्णात्मक **मूल कला** हैं। ई - इत्यादि दीर्घस्वर, ए - आदि संयुक्त स्वर तथा य - आदि इ - आदि स्वर तथा क्,स्, त्, र्, ज्, ञ् के सन्धि तथा संयोग समाहार हैं। इस प्रकार, **बारह वर्णोंमें विभक्त वर्णाम्नाय वस्तुत: अ - आदि सात स्वर और क – से म - पर्यन्त पचीस व्यञ्जनरूप बत्तीस भागोंमें विभक्त है।**

उक्त सौरदर्शनके अनुसार त्रिगुण, महत्, अहम्, पञ्च तन्मात्रा, पञ्च महाभूत, मन, चित्त, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और पञ्च कर्मेन्द्रिय, पञ्च प्राणरूप बत्तीस प्रभेद अचित् पदार्थोंके सिद्ध होते हैं। इन्हींको बत्तीस कला भी कहते हैं। सर्ग तथा विसर्ग अथवा अनुलोम और विलोमक्रमसे ये चौंसठ कलाएँ हैं।

उक्त अचित् प्रभेदके साथ ॐगत अ, उ, म् तथा अर्द्धतन्मात्रात्मक वैश्वानर, हिरण्यगर्भ, सर्वेश्वर एवम् तुरीयब्रह्मरूप चित्सूर्यप्रभेदकी गणना करनेपर सौरागमके अनुसार छत्तीस तत्त्व सिद्ध होते हैं।

शैवागममें प्रकृति, त्रिगुण (सत्त्व, रजस्, तमस्) महत् (बुद्धि), अहम्, पञ्च तन्मात्रा, पञ्च महाभूत, मन, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और पञ्च कर्मेन्द्रिय, राग, नियति, काल, विद्या, कला. माया, शुद्ध विद्या, ईश्वर तथा पुरुष - छत्तीस तत्त्व सिद्ध होते हैं। कलाओंका समग्र वर्णाम्नायकी दृष्टिसे स्कन्दपुराणके अनुसार अध्ययन तथा अनुशीलन करनेपर **ॐ ,१४ स्वर, ३३ व्यञ्जन, अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय**

तथा उपध्मानीय संज्ञक बावन मातृका वर्ण सिद्ध होते हैं। ॐ - प्रणव '**अ**' - '**औ**' पर्यन्त चौदह स्वरवर्ण हैं। '**क**' **से** '**ह**'- पर्यन्त तैंतीस वर्ण व्यञ्जन हैं। 'ं' अनुस्वार है। ':' विसर्ग है। '**क**', '**ख**' से पूर्व आधे विसर्गके समान ᳵ ध्वनिको जिह्वामूलीयकहते हैं। '**प**' , '**फ**' से पूर्व आधे विसर्गके समान ध्वनिको ᳶ उपध्मानीय कहते हैं। -

''ओङ्कारः प्रथमस्तस्य चतुर्दश स्वरास्तथा।
वर्णाश्चैव त्रयस्त्रिंशदनुस्वारस्तथैव च।।
विसर्जनीयश्च परो जिह्वामूलीय एव च।
उपध्मानीय एवापि द्विपञ्चाशदमी स्मृताः।।''
(स्कन्दपुराण मा० कुमार० ३,२३५- २३६)

पुराणोक्त **मातृकासार** इस प्रकार है - ॐ कारगत अकार ब्रह्मा, उकार विष्णु, मकार महेशँ अर्द्धमात्रा सदाशिव हैं। -

''अकारः कथितो ब्रह्मा उकारो विष्णुरुच्यते।
मकारश्च स्मृतो रुद्रस्त्रयश्चैते गुणाः स्मृताः।।
अर्द्धमात्रा च या मूर्ध्नि परमः स सदाशिवः।
(स्कन्दपुराण मा० कुमा०३.२५१.२५२)

अकारसे लेकर औकारतक चौदह स्वर मनुस्वरूप हैं। **ककारसे लेकर हकारतक** तैंतीस देवता हैं। **ककारसे ठकारतक** बारह आदित्य, **डकारसे बकारतक** ग्यारह रुद्र हैं। **भकारसे षकारतक** आठ वसु हैं। '**स**' और '**ह**' अश्विनीकुमार हैं। अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय - **ये चार अक्षर जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज नामक चार प्रकारके जीव बताये गये हैं। -**

''औकारान्ता अकाराद्या मनवस्ते चतुर्दश।

....

ककाराद्या हकारान्तास्त्रयस्त्रिंशच्च देवताः।
ककाराद्याष्ठकारान्ता आदित्या द्वादश स्मृताः।।

डकाराद्या वकारान्ता रुद्राश्चैकादशैव ते।
मकराद्याः षकारान्ता अष्टौ हि वसवो मताः।
सहौ चेत्यश्विनौ ख्यातौ त्रयस्त्रिंशदिति स्मृताः।।
अनुस्वारो विसर्गश्च जिह्वामूलीय एव च।
उपध्मानीय इत्येते जरायुजास्तथाण्डजाः।
स्वेदजाश्चोद्भिज्जाश्चापि पितर्जीवाः प्रकीर्तिताः।।
(स्कन्दपुराण मा० कुमा० ३.२५४-२६२)

स्वायम्भुव, स्वारोचिष, औत्तम, रैवत, तामस, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, दक्षसावर्णि, धर्मसावर्णि, रौच्य,भौत्य -ये **चौदह मन** हैं। धाता, मित्र, अर्यमा, शक्र, वरुण, अंशु, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु - ये **द्वादश आदित्य** हैं। कपाली, पिङ्गल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, अजक, शासन, शास्ता, शम्भु, चण्ड तथा भव - ये **एकादश रुद्र** हैं। ध्रुव, घोर, सोम, आप, नल, अनिल, प्रत्यूष और प्रभास - ये **आठ वसु** हैं। नासत्य तथा दस्र - **दो अश्विनीकुमार** हैं। ध्यान रहे, मन्त्रमाता मात्रिकाके बावन प्रभेदका प्रशस्तक्रम तन्त्रोंमें **अक्षमालिकोपनिषत** के अनुसार ओङ्कारघटित इस प्रकार है - **आदिक्षान्तमूर्तिः** - ''ॐ अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, लृ , ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह, ळ, क्ष,'' (डकारस्य ळकारो बह्वृचाध्येतृसम्प्रदायप्राप्तः। तथा च पठ्यते - ''अज्मध्यस्थडकारस्य ळकारं बह्वृचा जगुः। अज्मध्यस्थढकारस्य ळहकारं वै यथाक्रमम्''।।) **लघुषोढान्यासादिके अनुसार ५२ मातृकाओंको शक्तिसहित गणेश, शिव, सूर्य, विष्णुरूप माना गया है।** इनके अर्थानुसन्धानपूर्वक जपसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्षकी सिद्धि सुनिश्चित है।

य, र, ल, व, श, ष, स, ह, ळ, क्ष - से सम्बद्ध धूम्रा, ऊष्मा, ज्वलिनी, ज्वालिनी, विस्फुलिङ्गिनी, सुश्रिया, सुरूपा, कपिला, हव्यवाहिनी

और कव्यवाहिनी - दश **वह्निकला** हैं।

षं पीता, सं श्वेता, हं अरुणा, क्षं असिता - चार ईश्वरकला हैं। "ये स्वरास्ते धवला:। ये स्पर्शास्ते पीता:। ये परास्ते रक्ता:।।" (अक्षमालिकोपनिषत् १) - " षकार पीत वर्णका है। सकार श्वेत वर्णका है। हकार अरुण वर्णका है। क्षकार असित (कृष्ण) वर्णका है। स्वर श्वेत हैं। स्पर्श पीत वर्णके हैं। अतिरिक्त (पर) यरादि रक्त हैं। "

प्रकारान्तरसे यह भी समझना चाहिये कि मातृकाओंके परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी - संज्ञक चार प्रभेद ईशकला हैं। सर्वतत्त्वात्मिका, सर्वविद्यात्मिका, सर्वशक्त्यात्मिका तथा सर्वदेवात्मिका चार **ईशकला** हैं। -

" नमस्ते परारूपे, नमस्ते पश्यन्तीरूपे, नमस्ते मध्यमारूपे, नमस्ते वैखरीरूपे। सर्वतत्त्वात्मिके, सर्वविद्यात्मिके, सर्वशक्त्यात्मिके सर्वदेवात्मिके।।" (अक्षमालिकोपनिषत् १)

कृतयुग तथा ब्राह्मणके वर्ण श्वेत होते हैं। त्रेता तथा क्षत्रियके वर्ण लाल होते हैं। द्वापर तथा वैश्यके वर्ण पीत होते हैं। कलि तथा शूद्रके वर्ण कृष्ण होते हैं। अतएव कृतयुगमें श्रीहरिके अवतारका वर्ण श्वेत होता है। त्रेतामें श्रीहरिके अवतारका वर्ण लाल होता है। द्वापरमें श्रीहरिके अवतारका वर्ण पीला होता है।कलियुगमें श्रीहरिके अवतारका वर्ण काला होता है। -

" ब्राह्मणनां सितो वर्ण: क्षत्रियाणां तु लोहित:।
वैश्यानां पीतको वर्ण: शूद्राणामसितस्तथा।।"
(महाभारत शान्तिपर्व १८८,५)

"कृते शुक्ल:" (श्रीमद्भागवत ११. ५. २१), "त्रेतायां रक्तवर्ण:" (११.५.२४), "द्वापरे भगवाञ्छ्याम: पीतवासा निजायुध:" (११.५.२७), "कलावपि यथा शृण, कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णम् " (११.५.३१,३२)।।"

"वर्णास्त्रय: किलास्यासन् गृह्णतोऽनुयुगं तनू:।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गत:।।"
(श्रीमद्भागवत १०. २६. १६)

उक्त रीतिसे भगवत्तत्त्व नित्य, सर्वगत, आत्मा, कूटस्थ और निर्दोष है। वह स्वरूपत: निर्गुण और निष्कल है। वह आत्ममायासे सर्गादि कृत्योंके निर्वाहकी भावनासे सकल और जलचन्द्रवत् विविध परिलक्षित होता है। वह उत्पत्त्यादि कृत्योंके सम्पादनके लिए हिरण्यगर्भात्मक सूर्य, आदित्यसंज्ञक विष्णु, शिवसंज्ञक रुद्र, विनायकरूप गणपति और विद्यास्वरूपा शक्तिरूपसे परिलक्षित होता है। उसकी विविधताको सत्य मानने वाले भ्रान्त हैं। -

''नित्य: सर्वगतो ह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जित:।
एक: सम्भिद्यते भ्रान्त्या मायया न स्वरूपत:।।''
(श्रीजाबालदर्शनोपनिषत् १०.३)

''एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थित:।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्।।''
(त्रिपुरातापिन्युपनिषत् १२)

''एको देव: सर्वभूतेषु गूढ: सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्ष: सर्वभूताधिवास: साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।''
(श्वेताश्वतरोपनिषत् ६,११, गोपालोत्तरता.१८)

इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ब्रह्मा और अनन्त दश दिक्पाल उसकी विभूतिरूप स्फूर्ति हैं।

इस प्रकार मायाशक्ति, पञ्चदेव और दश दिक्पालरूप षोडशकलासम्पन्न प्रभुको नमस्कार है। -

''रुद्राय नम आदित्याय नमो विनायकाय नम: सूर्याय नमो विद्यायै नम:। इन्द्राय नमोऽग्नये नम: पित्रे नम: निर्ऋतये नमो वरुणाय नमो मरुते नम: कुबेराय नम: ईशानाय नमो ब्रह्मणे नमोऽनन्ताय नम: सर्वेभ्यो देवेभ्यो नम:।।''
(गोपालोत्तरतापिन्युपनिषत् १९)
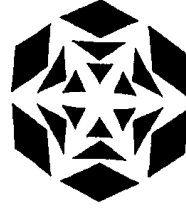
११. अवतारालङ्कार

(श्रीभगवद्विग्रहका रहस्यात्मक स्वरूप)

सर्वेश्वर श्रीहरि सत्त्वादिगुणोंके नियामक हैं। वे रजोगुणके योगसे समयानुरूप स्रष्टा सिद्ध होते हैं। सत्त्वगुणके योगसे समयानुरूप पालक सिद्ध होते हैं। तमोगुणके योगसे समयानुरूप संहारक सिद्ध होते हैं। -

''सृजत्येष जगत्सृष्टौ स्थितौ पाति सनातनः।
हन्ति चैवान्तिकत्वेन रजःसत्त्वादिसंश्रयः।।"

(श्रीविष्णुपुराण १. २२.२२)

सर्गकालमें स्रष्टा सर्वेश्वर रजोगुणके योगसे अव्यक्तमूर्ति ब्रह्मा, मरीचि आदि प्रजापति, काल और स्थावर - जङ्गम जीवरूप चतुर्व्यूहरूपसे प्रतिष्ठित होते हैं।

संरक्षणकालमें सर्वेश्वर सत्त्वगुणके योगसे विष्णु, मनु, काल और स्थावर - जङ्गम जीवरूप चतुर्व्यूहरूपसे प्रतिष्ठित होते हैं।

संहारकालमें सर्वेश्वर तमोगुणके योगसे रुद्र, अन्तकाग्नि, काल और स्थावर - जङ्गम जीवरूप चतुर्व्यूहरूपसे प्रतिष्ठित होते हैं।

सर्ग, स्थिति और संहृतिमें काल और स्थावर - जङ्गम प्राणी अनुगत हेतु हैं। समयपर उद्भव, स्थिति, संहार - सम्भव होनेसे काल तीनोंमें अनुगत हेतु हैं।

सृष्टि, स्थिति और संहृतिके मुख्य विषय स्थावर - जङ्गम प्राणी हैं। पृथिव्यादिकी संरचना भी उन्हींके निमित्तसे है। अतः चराचर प्राणी सृष्टि, स्थिति, संहारमें अनुगत हेतु हैं।

सर्ग - स्थिति - संहाररूप कृत्यभेदसे परमेश्वरके क्रमशः ब्रह्मा,

विष्णु और रुद्र - त्रिरूप हैं। मरीच्यादि प्रजापति, मनु और अग्नि - उत्कृष्ट प्राणी हैं। ये उत्पत्ति, स्थिति, संहृतिमें परमेश्वरके परिकर सिद्ध होकर स्वयं भी सर्वेश्वरके उत्पाद्य, पाल्य और संहार्य सिद्ध होते हैं। इन सबकी भगवद्रूपता परमेश्वरकी त्रिगुणात्मिका मायाके द्वारसे अभिन्ननिमित्तोपादानताके कारण चरितार्थ है। सृष्टि - संरचनामें ब्रह्मा, मरीच्यादि प्रजापति और विविध प्राणी क्रमिक हेतु हैं। अभिप्राय यह है कि ब्रह्मा मरीच्यादि प्रजापतियोंके स्रष्टा हैं और मरीच्यादि प्रजापति विविध प्राणियोंके स्रष्टा हैं। लोकन्यायसे पूर्व -पूर्व प्राणी उत्तर - उत्तर प्राणियोंके स्रष्टा हैं।

सृष्टिसंरक्षणमें विष्णु, मनु और चराचर प्राणी क्रमिक हेतु हैं। अभिप्राय यह है कि विष्णु मनुओंके पालक हैं और मनु विविध प्राणियोंके संरक्षक हैं। लोकन्यायसे पूर्व -पूर्व प्राणी उत्तर - उत्तर प्राणियोंके पोषक हैं।

सृष्टिसंहरणमें रुद्र, अग्नि और चराचर प्राणी क्रमिक हेतु हैं। अभिप्राय यह है कि रुद्र, अग्नि और यमादिके संहारक हैं और अग्नि तथा अन्तकादि विविध प्राणियोंके संहारक हैं। लोकन्यायसे प्रबल प्राणी दुर्बल प्राणियोंके संहारक हैं।

ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रकी एकरूपताके तुल्य मरीचि, मनु और अग्निकी एकरूपता चरितार्थ है।

सर्जन, रक्षण और संहरणके अनुरूप प्रवृत्तिमें हेतु काल है। कालात्मा श्रीहरि स्वयं हैं।

उक्त रीतिसे सृज्य - सर्जक, रक्ष्य -रक्षक और नाश्य - नाशकरूपसे सर्वेश्वरकी स्फूर्ति सृष्टि, स्थिति और संहृतिकी इतिश्री है। -

"आत्मैव तदिदं विश्वं सृज्यते सृजति प्रभुः।
त्रायते त्राति विश्वात्मा ह्रियते हरतीश्वरः।।"
(श्रीमद्भागवत ११.२८.६)

वस्तुतः निर्गुण, निर्धर्मक सच्चिदानन्दस्वरूप निर्भेद स्वतःसिद्ध शिवात्मतत्त्व ही व्यवहारभूमिमें अभ्युदय और निःश्रेयसकी सिद्धिके लिए सर्वेश्वररूप साध्य और कर्म, उपासना, योग, भक्ति तथा बोधरूप साधन

-रूपसे विलसित हैं। गन्ध तन्मात्राकी पृथिवी और गन्धरूपसे तथा पृथ्वीकी गन्ध, नासिका तथा अश्विनीरूपसे और रूपतन्मात्राकी तेज तथा रूप -रूपसे और तेजोद्रव्यकी रूप, नेत्र और सूर्यरूपसे स्फूर्तिके सदृश यह रहस्य हृदयङ्गम करने योग्य है।

स्वात्मप्रकाशका उल्लास **प्रपञ्च** है तथा स्वात्मप्रकाशकी विस्तारिणी **शक्ति - प्रकृति** है। यह तथ्य श्रीविष्णुपुराणके समुद्धृत वचनके अनुशीलनसे सिद्ध है। -

''अक्षरं तत्परं ब्रह्म क्षरं सर्वमिदं जगत्।
एकदेशस्थितस्याग्नेर्ज्योत्स्ना विस्तारिणी यथा।
परस्य ब्रह्मणः शक्तिस्तथेदमखिलं जगत्।।''
(श्रीविष्णुपुराण १.२२.५६)

''अक्षर ही वह परब्रह्म है और क्षर सम्पूर्ण जगत् है। जिस प्रकार एकदेशीय अग्निमें सन्निहित ज्योत्स्नाको विकीर्ण करनेवाली शक्तिका उल्लास विस्तृत प्रकाश शक्तिका अनुमापक होनेसे शक्तिरूप है, उसी प्रकार परब्रह्ममें सन्निहित शक्तिका सम्पूर्ण जगत् उल्लास होनेसे शक्तिपद वाच्य है।।''

अनादि अगुण अद्वय अव्यय सच्चिदानन्द ही प्रकृतिसे अवच्छिन्न पुरुष तथा प्रकृतिके परिणामभूत महत्, अहम्, तन्मात्रा, मन, इन्द्रिय, विद्या, अविद्या और स्थावर - जङ्गम प्राणिवर्गके रूपमें विलसित है। अतएव पुरुषसे प्राणिवर्गपर्यन्त श्रीहरिके भूषण और आयुधरूप हैं। श्रीहरि कूटस्थ निर्विकार आत्मतत्त्वको कौस्तुभरूपसे धारण करते हैं। वे त्रिगुणात्मक प्रधानको श्रीवत्सरूपसे धारण करते हैं। वे महदात्मिका बुद्धिको गदारूपसे धारण करते हैं। वे तामस और राजस अहङ्कारको शार्ङ्गधनुषरूपसे धारण करते हैं। प्रभु सात्त्विक अहम् से निष्पन्न वेगयुक्त चञ्चल मनको चक्ररूपसे धारण करते हैं। वे पञ्चतन्मात्रा और पञ्चभूतोंको मुक्ता, माणिक्य, मरकत, इन्द्रमणि-और हीरक - मयी वैजयन्ती मालारूपसे धारण करते हैं। वे ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंको वाणरूपसे अङ्गीकार करते हैं। वे अविद्याकोशसे आच्छादित विद्यामय ज्ञानको खड्गरूपसे धारण करते हैं। विवक्षावशात्

प्रकारान्तरसे यह भी माना गया है कि चिदधिष्ठित और चिद्भोग्य साङ्ख्यसम्मत त्रिगुणमयी प्रकृतिसे पृथिवीपर्यन्त चौबीस तत्त्वात्मक तथा उनसे विनिर्मित भुवनात्मक तथा शब्दब्रह्मात्मक वेद और वेदबीज प्रणवात्मात्मक एवम् वेदविहित कर्मज्ञानादि साधनात्मक श्रीहरिके वस्त्राभूषणादि हैं। श्रीहरि स्वयं कार्य - कारणातीत परब्रह्म हैं। वे कौस्तुभमणिके रूपमें स्वप्रकाश आत्माको धारण करते हैं और उसकी व्यापिनी प्रभाको वक्ष:स्थलपर श्रीवत्सरूपसे धारण करते हैं। वे त्रिगुणमयी मायाको वनमालारूपसे धारण करते हैं। प्रभु छन्दोमय वेदको पीताम्बररूपसे धारण करते हैं। वे त्रिमात्र प्रणवको यज्ञोपवीतके रूपमें धारण करते हैं। उनके साङ्ख्य और योग मकराकृत कुण्डल हैं। सर्वोपरि ब्रह्मलोक उनका मुकुट है । मूलप्रकृति उनकी शेषशय्या है। धर्मज्ञानादिके उद्गमस्थल सत्त्वगुण नाभिमण्डलके रूपमें प्रतिष्ठित है। श्रीहरि ओज, सह और बलात्मक मन, इन्द्रिय और शरीरसे सम्बद्ध शक्तिसम्पन्न प्राणको कौमोदकी गदारूपसे धारण करते हैं। वे जलतत्त्वको पाञ्चजन्य शङ्खरूपसे तथा तेजस्तत्त्वको सुदर्शनचक्ररूपसे, आकाशको खड्गरूपसे धारण करते हैं। प्रभु तमोमय अज्ञानको ढालरूपसे, कालको शार्ङ्गधनुषरूपसे, कर्मको तरकसरूपसे, इन्द्रियोंको वाणरूपसे स्वीकार करते हैं। क्रियाशक्तियुक्त मन श्रीहरिका रथ है। तन्मात्राएँ रथके बाहरी भाग हैं। वर, अभयादि मुद्राओंसे उनकी वरदान, अभयदान आदि रूपमें क्रियाशीलता प्रकट होती है।

श्रीहरि समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्यात्मक षडैश्वर्यरूप लीलाकमलको अपने करकमलमें धारण करते हैं। उक्त षडैश्वर्यमें धर्मको चँवर तथा यशको व्यजन (पङ्खा) रूपसे परिकर धारण करते हैं। अभयधाम वैकुण्ठ ही प्रभुका छत्र है। शब्दब्रह्मात्मक वेदरूप गरुड ही श्रीमन्नारायणका वाहन और ध्वज है। आत्मशक्ति ही अनपायिनी भगवती लक्ष्मी है। अणिमादि अष्टसिद्धियाँ नन्द, सुनन्दादि अष्ट द्वारपाल हैं।

विश्वविश्रुत पार्षदप्रवर विष्वक्सेन पाञ्चरात्रादि तन्त्ररूप आगम हैं।

स्वयं श्रीहरि ही वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धसंज्ञक चतुर्व्यूहरूपसे उद्भासित हैं। स्थूलभुक् वैश्वानर, प्रविविक्तभुक् हिरण्यगर्भ, आनन्दभुक् सर्वेश्वर और उपलब्धिस्वरूप तुरीयरूपसे प्रभु ही उल्लसित हैं।

उक्त रीतिसे एक भगवान् ही मायाके द्वारा काल, देश, समर्पणादिक्रिया, कर्ता, स्रुवादि करण, यागादि कर्म, मन्त्र, शाकल्यादि द्रव्य तथा स्वर्गादि फलरूपसे नवधा निरूपित होते हैं। -

"कालो देशः क्रिया कर्ता करणं कार्यमागमः।
द्रव्यं फलमिति ब्रह्मन् नवधोक्तोऽजया हरिः।।"
(श्रीमद्भागवत १२.११.३१)

सूर्यमण्डल अथवा अग्निमण्डल स्वप्रकाश प्रभुका पूजास्थल है। अन्तःकरणकी शुद्धि मन्त्रदीक्षा है और अपने समस्त पापोंको नष्ट कर देना प्रभुकी पूजा है। -

"मण्डलं देवयजनं दीक्षा संस्कार आत्मनः।
परिचर्या भगवत आत्मनो दुरितक्षयः।।"
(श्रीमद्भागवत १२.११.१७)

श्रीहरिके श्रीकृष्णादि विविध अवतारों तथा शक्ति, गणपति, शिव, सूर्यादि विविध रूपोंका तात्त्विक विवेचन कृष्णोपनिषत् , भावनोपनिषदादि सम्बद्ध ग्रन्थोंकी शैलीमें हृदयङ्गम करने योग्य है।

अभिधान और अभिधेय - प्रपञ्चरूपसे विलसित अखण्ड बोधात्मा सर्वेश्वरकी देश, काल, वस्तुरूपताके तथा इनसे अतीत निरामयरूपताके अनुशीलनसे सर्वानर्थका समूलोन्मूलन सुनिश्चित है।

उक्त रहस्यके मर्मज्ञ भगवद्भक्त पुरुष, प्रकृति और महत् से पार्थिवपर्यन्त पदार्थोंका सम्यक् उपयोग और प्रयोग कर भगवत्साधर्म्यप्राप्त अतुल पराक्रमसम्पन्न होते हैं।

१२. अवतारालोक

(विविध द्वीपोंमें आराध्य अवतारकी उपासनाका प्रकार)

पूर्वकालमें स्वायम्भुव मनुके हरिभक्त प्रतापी पुत्र प्रियव्रतने विचार किया कि भगवान् सूर्य सुमेरुकी परिक्रमा करते हुए लोकालोकपर्वतपर्यन्त क्रमसे पृथ्वीके आधे भागको ही आलोकित करते हैं, आधा भाग अन्धकारमयी रात्रिसे आच्छादित रहता है। तब उन्होंने रात्रिको दिन बना देनेकी भावनासे ज्योतिर्मय रथपर आरूढ होकर सूर्यके पीछे - पीछे पृथ्वीकी सात परिक्रमा की। उस समय उनके रथके पहियोंसे जो लीकें बनीं, उनसे पृथ्वीको सात द्वीपोंमें विभक्त करनेवाले सात समुद्र उत्पन्न हुए।

जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर संज्ञक **सप्त द्वीप** क्रमशः पूर्वापेक्षा द्विगुण हैं। जम्बूद्वीप **क्षारसिन्धु**से परिवेष्टित है। प्लक्षद्वीप **इक्षुरससिन्धु**से परिवेष्टित है। शाल्मलिद्वीप **सुरासिन्धु**से परिवेष्टित है। कुशद्वीप **घृतसिन्धु**से परिवेष्टित है। क्रौञ्चद्वीप **दधिसिन्धु**से परिवेष्टित है। शाकद्वीप **क्षीरसिन्धु**से परिवेष्टित है। पुष्करद्वीप **शुद्धोदकसिन्धु**से परिवेष्टित है। -

''जम्बूप्लक्षाह्वयौ वृक्षौ शाल्मलश्चापरो द्विजाः।
(जम्बूप्लक्षाह्वयौ वृक्षौ शाल्मलश्चापरो द्विज)
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः।।
एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्तसप्तभिरावृताः।
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलैः समम्।।''
(ब्रह्मपुराण १८. ११,१२, विष्णु० २.२.५,६)

श्रीमद्भागवतमें प्राप्त पाठक्रम और विवरणके अनुशीलनसे यह तथ्य

सिद्ध है कि क्रौञ्चद्वीप क्षीरसिन्धुसे तथा शाकद्वीप दधिमाण्डसे परिवेष्टित है। कल्पभेदसे विगानपरिहार कर्त्तव्य है। -

"जम्बूप्लक्षशाल्मलिकुशक्रौञ्चशाकपुष्करसंज्ञास्तेषां परिमाणं पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तर उत्तरो यथा सङ्ख्यं द्विगुणमानेन बहिः समन्तत उपक्लृप्ताः।। क्षारोदेक्षुरसोदसुरोदघृतोदक्षीरोददधिमण्डो-दशुद्धोदाः सप्त जलधयः सप्तद्वीपपरिखा इवाभ्यन्तरद्वीपसमाना एवैकश्येन यथानुपूर्वं सप्तस्वपि बहिर्द्वीपेषु पृथक्परित उपकल्पितास्तेषु जम्ब्वादिषु बहिष्मतीपतिरनुव्रताना-त्मजानाग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुहिरण्यरेतोघृतपृष्ठ-मेधातिथिवीतिहोत्रसंज्ञान् यथा सङ्ख्येनैकैकस्मिन्नेकमेवाधिपतिं विदधे।।" (श्रीमद्भागवत ५.१.३२,३३)

"क्रमशःजम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर संज्ञक सात द्वीप हैं। इनमें पूर्व - पूर्वकी अपेक्षा उत्तर - उत्तरके द्वीप द्विगुण परिमाणवाले हैं। ये सागरके बाहरी भागमें पृथ्वीके चारों ओर फैले हुए हैं।।" ३२।। सात समुद्र क्रमशः खारे जल, ईखके रस, मदिरा, घी, दूध, मट्ठे और मीठे जलसे भरे हुए हैं। ये सातों द्वीपोंकी खाइयोंके समान हैं और परिमाणमें अपने भीतरवाले द्वीपके समान हैं। इनमेंसे एक - एक क्रमशः अलग - अलग सातों द्वीपोंको बाहरसे घेरकर स्थित है। बर्हिष्मतीपति महाराज प्रियव्रतने अपने अनुगत पुत्र आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेधातिथि और वीतिहोत्रमेंसे क्रमशः एक - एकको उक्त जम्बू आदि द्वीपोंमेंसे एक - एकका राजा बनाया।।"३३।।

राजा सगरके पुत्रोंने अपने यज्ञके अश्वका अनुसन्धान करते समय जम्बूद्वीपको चारों ओरसे खोदा था। उससे **स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्ल, आवर्तन, रमणक, मन्दरहरिण, पाञ्चजन्य, सिंहल और लङ्का - आठ उपद्वीप** बने।

जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर संज्ञक सात द्वीप हैं। सुदर्शन नामक जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि और शाक वृक्षके कारण तन्नामक द्वीप हैं। कुशस्तम्बके कारण कुशद्वीप नाम है। क्रौञ्च

नामक पर्वतके कारण क्रौञ्च द्वीप नाम है। पुष्कर नामक पर्वतके कारण पुष्करद्वीप नाम है। इन अन्वर्थ नामोंसे पर्यावरणका महत्त्व परिलक्षित होता है। जम्बू आदि द्वीप नद, निर्झर, पर्वत, रत्न, वन, उपवनसे सुसज्जित हैं। यह कमलपत्र अथवा चक्रतुल्य गोलाकार है। यह एक लाख योजन विस्तृत है। चतुर्दिक् क्षारसिन्धुसे वेष्टित जम्बूद्वीप मध्यवर्ती द्वीप है। उसके भी मध्यमें सुवर्णमय सुमेरुपर्वत है। जम्बूद्वीप अपने समान परिमाण और विस्तारवाले क्षारसिन्धुसे परिवेष्टित है। खाई जिस प्रकार उपवनसे घिरी रहती है, उसी प्रकार क्षारसिन्धु भी अपनेसे दूने विस्तारवाले प्लक्षद्वीपसे घिरा हुआ है। प्लक्षद्वीप अपने समान परिमाण और विस्तारवाले इक्षुसिन्धुसे परिवेष्टित है। इक्षुसिन्धु अपनेसे दूने विस्तारवाले शाल्मलीद्वीपसे घिरा हुआ है। शाल्मलीद्वीप अपने समान परिमाण और विस्तारवाले सुरासिन्धुसे परिवेष्टित है। सुरासिन्धु अपनेसे दूने विस्तारवाले कुशद्वीपसे घिरा हुआ है। कुशद्वीप अपने समान परिमाण और विस्तारवाले घृतसिन्धुसे परिवेष्टित है। घृतसिन्धु अपनेसे दूने विस्तारवाले क्रौञ्चद्वीपसे घिरा हुआ है। क्रौञ्चद्वीप अपने समान परिमाण और विस्तारवाले क्षीरसिन्धुसे परिवेष्टित है। - "**घृतोदाद्बहिः क्रौञ्चद्वीपो द्विगुणः स्वमानेन क्षीरोदेन परित उपक्लृप्तः**" (**श्रीमद्भागवत ५.२०.१८**)। क्षीरसिन्धु अपनेसे दूने विस्तारवाले शाकद्वीपसे घिरा हुआ है। शाकद्वीप अपने समान परिमाण और विस्तारवाले दधिमण्डसिन्धुसे परिवेष्टित है। -"**एवं पुरस्तात्क्षीरोदात्परित उपवेशितः शाकद्वीपो द्वात्रिंशल्लक्षयोजनायामः समानेन च दधिमण्डोदेन परीतः**" (**श्रीमद्भागवत ५.२०.२४**)। दधिमण्डोद अपनेसे दूने विस्तारवाले पुष्करद्वीपसे घिरा हुआ है। पुष्करद्वीप अपने समान परिमाण और विस्तारवाले शुद्धोदकसिन्धुसे परिवेष्टित है।

इस प्रकार, पूर्व-पूर्व द्वीपसे उत्तर - उत्तर द्वीप द्विगुण परिमाणवाले हैं। सातों द्वीप समान परिमाणवाले सागरसे परिवेष्टित हैं।अभिप्राय यह है कि पूर्ववर्ती सागरसे उत्तरवर्ती सागर द्विगुणपरिमाणपरिमित हैं। पश्चिम समुद्रतक फेले हुए हिमाच्छादित हिमवान्, सुवर्णमय हेमकूट, रमणीय निषध,

वैदुर्यमणिमय नीलगिरि, सुवर्णमय श्वेतगिरि, सुवर्णमय शृङ्गवान् - नामक छह वर्षपर्वत हैं। नील और निषधकी अपेक्षा अन्य पर्वत न्यूनाकृतिवाले हैं। मेरुपर्वतके दक्षिणकी ओर प्रथम **हिमवर्ष या भारतद्वीप** है। हिमवान् और हेमकूट पर्वतके मध्य **किम्पुरुषवष** है। हेमकूट और निषधपर्वतके मध्य **हरिवर्ष** है। निषध और मेरुपर्वतके मध्य **इलावृतवष** है। निषध और नीलपर्वतके मध्य **रम्यकवर्ष (रमणकवर्ष)**है। नील और श्वेतपर्वतके मध्य **हिरण्यकवष** है। श्वेत और शृङ्गवान् पर्वतके मध्य **हिरण्यवतवर्ष** है। शृङ्गवान् पर्वतके उत्तर और दक्षिण समुद्रतटतक **उत्तरकुरुवष** है। यह द्वीपमण्डलकी सीमापर स्थित होनेके कारण भारतकी तरह धनुषाकार है। मेरुके दक्षिणमें भारतवर्ष है, उसके उत्तरमें उत्तरकुरु है तथा पूर्वम **भद्राश्ववर्ष** है एवम् पश्चिममें **केतुमालवर्ष** है। मेरुका मध्यवर्ती देश **इलावृतवर्ष** है।

मत्स्यपुराण और वायुपुराणके अनुसार प्रजाओंकी सृष्टि करनेवाले और उनका पालन करनेवाले मनुको **भरत** कहा गया है। निरुक्त वचनोंके अनुसार यह वर्ष उन्हींके नामपर भारतवर्षके नामसे प्रसिद्ध है। -

''भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते।।
निरुक्त वचनाच्चैव वर्षं तद् भारतं स्मृतम्।"
(मत्स्यपुराण ११४.५, ५.१/२, वायु. उपो.१०.४५.७६)

अथवा वायुपुराणके अनुसार वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तरके सोलहवें कृतयुगमें प्रजाका विशेषरूपसे पालन करनेवाले शाकुन्तल भरत थे। उन्हींके नामपर यह वर्ष भारतवर्षके नामसे प्रसिद्ध है। -

''शकुन्तलायां भरतनाम्ना तु भारतं कृते।
षोडशतमे प्राप्ते प्रजानां भरणं कृतम्।। "
''षोडशतमे हि राजा दुष्यन्तश्च कृते युगे।
शकुन्तलायां भरतस्तन्नाम्ना तु भारतम्।।"
(वायुपुराण ९९.५५)

अथवा श्रीमद्भागवतके अनुसार, भगवान् ऋषभदेवके ज्येष्ठपुत्र भरतजीके नामपर इस देशका नाम भारतवर्ष हुआ। उनसे पूर्व इसका नाम अजनाभवर्ष था। भरत भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ थे। भगवान् ऋषभदेवने अपने सङ्कल्पमात्रसे उन्हें पृथ्वीकी रक्षा करनेके लिए नियुक्त किया था। उन्होंने अत्यन्त वात्सल्यभावसे पूर्वजोंके समान स्वधर्मनिष्ठ रहते हुए प्रजाका पालन किया। -

" भरतस्तु महाभागवतो यदा भगवतावनितलपरिपालनाय सञ्चिन्तितस्तदनुशासनपरः..........अजनाभं नामैतद्वर्षं भारतमिति यत आरभ्य व्यपदिश्यन्ति।। स बहुविन्महीपतिः पितृपितामहवदुरुवत्सलतया स्वे स्वे कर्मणि वर्तमानाः प्रजाः स्वधर्ममनुवर्तमानः पर्यपालयत्।।" (श्रीमद्भागवत ५.७.१,३)

स्वायम्भुवमनुके प्रियव्रत नामक प्रसिद्ध पुत्र थे। उनके पुत्र आग्नीध्र हुए। आग्नीध्रतनय नाभिके पुत्र भगवान् वासुदेवके अंश ऋषभ हुए। उनके ज्येष्ठ पुत्र राजर्षि भरत हुएं। भगवद्भक्त भरतके नामसे यह अद्भुत भूमिखण्ड, जो पूर्वमें **अजनाभवर्ष** कहलाता था, **भारतवर्ष** कहलाया। -

"तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः।
विख्यातं वर्षमेतद् यन्नाम्ना भारतमद्भुतम्।।"
(श्रीमद्भागवत ११.२.१७)

इस भारतवर्षके इन्द्रद्वीप, कशेरुमान्, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्यद्वीप, गान्धर्वद्वीप, वारुणद्वीप तथा भारतद्वीप (भरतखण्ड) - नौ भेद हैं। यह द्वीप दक्षिणसे उत्तरतक एक हजार योजन परिमित है। इसका विस्तार गङ्गाके उद्गमस्थानसे कन्याकुमारी (कुमारी अन्तरीप) तक है। यह तिरछेरूपसे ऊपर - ही - ऊपर दस हजार योजन विस्तृत है। इस भारतद्वीपमें महेन्द्र (उड़ासाके दक्षिण - पूर्वीभागका पर्वत), मलय, सह्य, शुक्तिमान् (रायगढ़से मानभूमिके डालमा पहाड़ी तक), ऋक्षवान् (विन्ध्यपर्वतमालाका पूर्वीभाग), विन्ध्य और पारियात्र नामक सात विश्वविख्यात **कुलपर्वत** हैं। इसमें गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु (सतलज), चन्द्रभागा

(चिनाव), इरावती (रावी), वितस्ता (झेलम), विपाशा (व्यास), यमुना, सरयू, गोमती, कौशिकी (कोसी), गण्डकी आदि दिव्य नदियाँ हिमालयकी उपत्यका (तलहटी) से निकली हुई हैं।

"पुरा हिमवतश्चैषा हेमशृङ्गाद्विनिस्सृता।
गङ्गा गत्वा समुद्राम्भः सप्तधा समपद्यत।।
गङ्गां च यमुनां चैव प्लक्षजातां सरस्वतीम्।
रथस्थां सरयूं चैव गोमतीं गण्डकीं तथा।।
अपर्युषितपापास्ते नदीः सप्त पिबन्ति ये।"
(महाभारत आदिपर्व १६९. १९ - २०.१/२)

"प्राचीन कालमें हिमालयके स्वर्णशिखरसे निकली हुई गङ्गा सात धराओंमें विभक्त हो, समुद्रमें जाकर मिल गयी। जो गङ्गा, यमुना, प्लक्षकी जड़से प्रकट हुई सरस्वती, रथस्था, सरयू, गोमती और गण्डकी - इन सात नदियोंका जल पीते हैं, उनके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं।।"

वेत्रवती (बेतवा), मही, चर्मण्वती, विदिशा, शिप्रा, अवन्ती, कुन्ती आदि नदियोंका उद्गमस्थल पारियात्र पर्वत है।

शेण, महानदी, नर्मदा, मन्दाकिनी, दशार्णा, तमसा, विमला, वालुवाहिनी, शुक्तिमती, लज्जा, मुकुटा और ह्रदिका आदि कल्याणमयी नदियाँ ऋक्षवान् पर्वतकी उपत्यका (तलहटी) से निकली हुई हैं।

तापी, पयोष्णी, क्षिप्रा, निषधा, वैतरणी, कुमुद्वती, तोया, दुर्गा, तथा अन्तःशिला आदि मङ्गलमयी नदियाँ विन्ध्याचलकी उपत्यका (तलहटी) से निकली हुई हैं।

गोदावरी, भीमरथी, मञ्जुला (मञ्जीरा), तुङ्गभद्रा, वाह्या (वर्द्धा) और कावेरी आदि नदियाँ सह्यपर्वतकी शाखाओंसे निकली हुई हैं।

कृतमाला (वैगईन), ताम्रपर्णी, पुष्पजा (पेन्नार, पेम्बे) और उत्पलावती आदि कल्याणमयी नदियाँ मलयाचलकी उपत्यका (तलहटी) से निकली हुई हैं।

त्रिषामा, ऋषिकुल्या, इक्षुला, त्रिदिवा, अचला, लाङ्गूलिनी और वंशधरा आदि नदियाँ महेन्द्रपर्वतकी उपत्यका (तलहटी) से निकली हुई हैं।

ऋषीका, सुकुमारी, मन्दगा, मनदवाहिनी, कृपा,पलाशिनी आदि नदियाँ शुक्तिमान् पर्वतकी उपत्यका (तलहटी) से निकली हुई हैं।

मत्स्यपुराणमें गङ्गादि नदियोंकी प्रशस्ति इस प्रकार है -

''सर्वाः पुण्यजलाः पुण्याः सर्वाश्चैव समुद्रगाः।
विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वपापहराः शुभाः।।"
(मत्स्यपुराण ११४.३३)

''ये सब पुण्यतोया नदियाँ पुण्यप्रदा,सर्वत्र बहनेवाली तथा साक्षात् या परम्परासे समुद्रगामिनी हैं। ये सब - की - सब विश्वके लिए माता - सदृश हैं। ये सब कल्याणकारिणी तथा पापहारिणी हैं।।"

भरतखण्डके मध्यमें कुरु, पाञ्चाल, शाल्व, शूरसेन, मत्स्य, किरात, कुन्तल, काशी, कोसल, कलिङ्ग और अन्धक आदि जनपद सह्यपर्वतके सन्निकट अवस्थित हैं। यहाँ गोदावरी नदी प्रवाहित होती है।

भरतखण्डके उत्तराखण्डमें बाह्लीक (बलख), आभीर, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, मद्रक (पञ्जाबका उत्तरी भाग), शक, द्रुह्य (पश्चिमी पञ्जाब), पलिन्द, कैकेय, कम्बोज (अफगाानिस्तान), दरद, बर्बर, पह्लव (ईरान), अत्रि, भरद्वाजादि उपनिवेश हैं।

भरतखण्डके पूर्व दिशामें अङ्ग (भागलपुर), वङ्ग (बङ्गाल),प्लवङ्ग, मातङ्ग, सुह्य (उत्तरी आसाम), मालव, प्राग्ज्योतिष (पूर्वी आसाम), शाल्व, मागध और गोनर्दादि जनपद हैं।

भरतखण्डके दक्षिणमें पाण्ड्य, केरल, चोल, सेतुक, महाराष्ट्र, आभीर, आवट्य, शबर, पुलिन्द, विन्ध्यमुलिक, नासिक्य प्रदेश हैं।

भरतखण्डके भारुकच्छ, सारस्वत, काच्छीक, सौराष्ट्र, आनर्त, अर्बुद आदि अपरान्त प्रदेश हैं।

भरतखण्डके विन्ध्यक्षेत्रके मालव, करूष. मेकल, उत्कल, औण्ड्र (उड़ीसा), दशार्ण, भोज, किष्किन्धक, दक्षिणकोसल, त्रैपुर, वैदिश, तुमुर, तुम्बर, नैषध, अवन्ति आदि प्रदेश हैं।

भरतखण्डके पर्वतोंपर स्थित निराहार, सर्वग, कुपथ,अपथ, समुद्रक, त्रिगर्त, मण्डल, किरात, चामरादि प्रदेश हैं।

भारतवर्षके अन्तर्गत क्रमशः किम्पुरुषवर्ष, हरिवर्ष, इलावृतवर्ष, रम्यक, हिरण्मय और कुरु आदि देश स्वर्गोपम हैं। पौराणिक धरातलपर भारतद्वीपकी अपेक्षा आयु, आरोग्य, रूपादिकी दृष्टिसे इनमें जन्म लेने और निवास करनेवाले मनुष्योंका अधिक उत्कर्ष ख्यापित होता है।

जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर संज्ञक सात द्वीपोंमें मध्यवर्ती जम्बूद्वीप है। उसके भी मध्यमें सुवर्णमय सुमेरु पर्वत है। -

" **जम्बूद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्यसंस्थितः।**
तस्यापि मेरुर्मैत्रेय मध्ये कनकपर्वतः।।"
(श्रीविष्णुपुराण २.२.७)

मेरुशिखरके मध्यमें भगवान् ब्रह्माजीकी पुरी है। उसके नीचे पूर्वादि आठ दिशाओं और उपदिशाओंमें उनके अधिपति आठ लोकपालोंकी आठ पुरियाँ हैं। मेरुके पूर्वमें इन्द्रकी **देवधाना**, दक्षिणमें यमराजकी **संयमना**, पश्चिममें वरुणकी **निमनोचनी** और उत्तरमें चन्द्रमाकी **विभावरी** नामकी पुरियाँ हैं। भगवान् वामनके बायें पाँवके अंगूठेके नखसे ब्रह्माण्डकटाहका शिरोभाग विदीर्ण हो गया। बह्माण्डकटाहके शिरोभागकी जलधारा उस विवरसे विनिःसृत होकर विष्णुस्वरूप भगवान् वामनके अरुणपादपद्म - किञ्जल्कके स्पर्शसे उपरञ्जित हो गयी। वह भगवत्पदी स्वर्गके शिरोभागमें स्थित ध्रुवलोकमें अवतीर्ण हुई। तदनन्तर सप्तर्षियोंके धामसे वह जलधारा चन्द्रमण्डलको आप्लावित करती हुई मेरुके शिखरपर ब्रह्मपुरीमें प्रवाहित हुई। ब्रह्मधाममें गङ्गा सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा - रूपा चार धाराओंमें विभक्त हुई। **सीता** गन्धमादनपर्वत और भद्राश्ववर्षको आप्लावित करती हुई पूर्व दिशामें क्षारसिन्धुमें विलीन होती है। **चक्ष** नामकी भगवत्पदी माल्यवान्के शिखरसे केतुमालवर्षमें प्रवाहित होती हुई पश्चिमदिशामें क्षारसिन्धुमें विलीन होती है। **भद्रा** मेरुपर्वतके शिखरसे उत्तरकी ओर उत्तरकुरुवर्षमें प्रवाहित होती हुई क्षारसिन्धुमें विलीन होती है। **अलकनन्दा** हेमकूट और हिमालयके शिखरोंसे प्रवाहित होती हुई दक्षिणके क्षारसिन्धुमें विलीन होती है।

उक्त नौ वर्षोंमें भारत ही कर्मभूमि है। अन्य आठ स्वर्गोपभोगके अनन्तर पुण्यशेषके फलस्वरूप प्राप्त होनेवाले वर्ष हैं। अतएव उन्हें भौम स्वर्ग कहते हैं। उक्त नौ वर्षोंमें सर्वेश्वर श्रीमन्नारायण वहाँके मनुष्योंपर अनुग्रह करनेके लिए विविध रूपोंमें उपास्य हैं। **इलावृतवर्ष**में पार्वती सहित उनकी सखियोंके आराध्य एकमात्र पुरुष शिव अपने अंशीभूत तमोगुणके नियामक सङ्कर्षणदेवकी उपासना करते हैं।

भद्राश्ववर्षमें धर्मपुत्र भद्रश्रवा और उनके मुख्य - मुख्य सेवक भगावान् वासुदेवकी धर्ममयी मूर्ति हयग्रीवरूपसे आराधना करते हैं।

हरिवर्षखण्डमें श्रीहरि नृसिंहरूपसे निवास करते हैं। परिकरसहित भक्तप्रवर प्रह्लाद निष्काम और अनन्यनिष्ठासे उनकी उपासना करते हैं।

केतुमालवर्षमें संवत्सर नामक प्रजापतिके वंशधर सहित लक्ष्मीजीका प्रिय करनेके लिए श्रीहरि कामदेवरूपसे उपासना करते हैं।

रम्यकवर्षमें मनुने पूर्वकालमें भगवान् के मत्स्यावतारका दर्शन किया था। रम्यकाधिपति मनु तबसे भगवान् मत्स्यकी आराधनामें संलग्न हैं।

हिरण्मयवर्षमें परिकरसहित पितृराज अर्यमा श्रीहरिके कूर्मावतारकी ध्यानावस्थित तद्गत चित्तसे आराधना करते हैं।

कुरुवर्षमें परिकरसहित भूदेवी वराहरूपसे सन्निहित श्रीहरिकी आराधना करती है।

किम्पुरुषवर्षमें किम्पुरुषोंके सहित भगवच्चरणसन्निकर्षाभिरत परम भागवत हनुमान् मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामभद्रकी उपासना करते हैं।

भारतवर्षमें करुणावरुणालय श्रीहरि संयमशील पुरुषोंपर अनुग्रह करनेके लिए नर - नारायणरूप धारण कर अव्यक्तरूपसे कल्पान्तपर्यन्त तपश्चर्यामें संलग्न हैं। उनका ध्यान धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, शान्ति और उपरतिकी उत्तरोत्तर वृद्धि और परमात्मोपलब्धिमें हेतु है। साङ्ख्य और योगसहित भगवन्महिमामण्डित पाञ्चरात्रागमका सावर्णि मुनिको उपदेश देनेवाले स्वयं देवर्षि नारद वर्णाश्रमधर्मनिष्ठ परिकरसहित प्रभु श्रीनरनारायणकी आराधना और उपासामें तत्पर रहते हैं।

यह भारतकी अद्भुत महिमा ही है कि जिन देवर्षि नारदकी चतुर्दश भुवनात्मक ब्रह्माण्डमें अबाध गति है, जो ब्रह्मलोकनिवासी हैं और श्रीब्रह्माजीके साक्षात् विरक्त मानसपुत्र हैं, ध्रुव, प्रह्लाद, प्रियव्रत और शुकादिके गुरु हैं, वे भारतवर्षमें संयमशील तपोधन नर - नारायणकी आराधना और उपासनामें तत्पर रहते हैं।

श्रीविष्णुपुराणके अनुसार -

''भद्राश्वे भगवान्विष्णुरास्ते हयशिरा द्विज।
वराहः केतुमाले तु भारते कूर्मरूपधृक्।।
मत्स्यरूपश्च गोविन्दः कुरुष्वास्ते जनार्दनः।
विश्वरूपेण सर्वत्र सर्वः सर्वत्रगो हरिः।।
सर्वस्याधारभूतोऽमैत्रेयास्तेऽखिलात्मकः।।''
(श्रीविष्णुपुराण २.२.५०-५२)

''हे द्विज ! श्रीविष्णुभगवान् भद्राश्ववर्षमें हयग्रीवरूपसे, केतुमालवर्षमें वराहरूपसे और भारतवर्षमें कूर्मरूपसे रहते हैं।। भक्तवत्सल श्रीगोविन्द कुरुवर्षमें मत्स्यरूपसे रहते हैं। सर्वरूप सर्वव्यापक श्रीहरि विश्वरूपसे सर्वत्र रहते हैं।। हे मैत्रेय ! वे सर्वाधार और सर्वात्मक हैं।।''

''यानि किम्पुरुषादीनि वर्षाण्यष्टौ महामुने।
न तेषु शोको नायासो नोद्वेगः क्षुद्भयादिकम्।।
स्वस्थाः प्रजाः निरातङ्कास्सर्वदुःखविवर्जिताः।
दशद्वादश वर्षाणां सहस्राणि स्थिरायुषः।।
न तेषु वर्षते देवो भौम्यान्यम्भांसि तेषु वै।
कृतत्रेतादिकं नैव तेषु स्थानेषु कल्पना।।
सर्वेष्वेतेषु वर्षेषु सप्त सप्त कुलाचलाः।
नद्यश्च शतशस्तेभ्यः प्रसूता या द्विजोत्तम।।''
(श्रीविष्णुपुराण २.२.५०-५२)

''हे महामुने ! किम्पुरुषादि आठ वर्षोंमें शोक, श्रम, उद्वेग और क्षुधाका भयादि कुछ भी नहीं है।। वहाँकी प्रजा स्वस्थ, आतङ्कहीन और

समस्त दु:खोंसे रहित है तथा वहाँके निवासी दस - बारह हजार वर्षकी स्थिर आयुवाले होते हैं।। उन वर्षोंमें वर्षा कभी नहीं होती, केवल पार्थिव जल ही है। उनमें कृत, त्रेता, द्वापर और कलियुगकी कल्पना (गति, प्रवृत्ति) नहीं है।। हे द्विजोत्तम! इन सब वर्षोंमें सात - सात कुलपर्वत हैं और उनसे निकली हुई सैकड़ो नदियाँ हैं।।"

महाभारत,श्रीविष्णुपुराणादिके अनुशीलनसे यह तथ्य सिद्ध है कि प्लक्षद्वीपसे लेकर शाकद्वीपपर्यन्त सदा त्रेतायुगके समान ही समय बना रहता है। इनमें वर्णाश्रमविभागानुसार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहरूप पञ्च मानवधर्मसे सम्म्पन्न नीरोग पाँच हजार वर्षोंतक जीवित रहनेवाले मनुष्य होते हैं। -

"त्रेतायुगसम: काल: सर्वदैव महामते।
प्लक्षद्वीपादिषु ब्रह्मञ्छाकद्वीपान्तिकेषु च।।
पञ्च वर्षसहस्राणि जना जीवन्त्यनामयम्।
धर्मा: पञ्च तथैतेषु वर्णाश्रमविभागश:।।"
(श्रीविष्णुपुराण २.४.१४,१५)

प्लक्षद्वीपमें ब्राह्मण आर्यक, क्षत्रिय कुरर, वैश्य विदिश्य और शूद्र भावी नामसे जाने जाते हैं। वहाँ आर्यकादि वर्णोंद्वारा सर्वेश्वर श्रीहरिका सोमरूपसे यजन किया जाता है। यह तुल्यपरिमाणपरिमित इक्षुरससिन्धुसे परिवेष्टित है।

शाल्मलद्वीपमें महौषधियोंसे भरपूर विश्वविख्यात द्रोणाचलादि पर्वत हैं। वहाँ ब्राह्मण कपिल, क्षत्रिय अरुण, वैश्य पीत और शूद्र कृष्ण नामसे जाने जाते हैं। वहाँ कपिलादि वर्णोंद्वारा सर्वेश्वर श्रीहरिका यज्ञाश्रय सर्वात्मा **वायु**रूपसे यजन किया जाता है। यह तुल्यपरिमाणपरिमित सुरासिन्धुसे परिवेष्टित है।

कुशद्वीपमें देव, दैत्य, दानव, यक्ष, किन्नर और नरादि निवास करते हैं। वहाँ ब्राह्मण दमी, क्षत्रिय शुष्मी, वैश्य स्नेह और शूद्र मन्देह नामसे जाने जाते हैं। वहाँ ब्राह्मणादि वर्णोंद्वारा प्रारब्धक्षयके निमित्त शास्त्रानुकूल कर्म करते हुए सर्वेश्वर श्रीहरिका **ब्रह्म**रूपसे अत्युग्र अहङ्कारके क्षयकी

भावनासे भजन किया जाता है। यह तुल्यपरिमाणपरिमित घृतसिन्धुसे परिवेष्टित है।

क्रौञ्चद्वीपमें देव और मनुष्यादि निवास करते हैं। वहाँ ब्राह्मण पुष्कर, क्षत्रिय पुष्कल, वैश्य धन्य और शूद्र तिष्य नामसे जाने जाते हैं। वहाँ पुष्करादि वर्णोंद्वारा सर्वेश्वर श्रीहरिका **रुद्र**रूपसे यज्ञोंद्वारा यजन किया जाता है। यह तुल्यपरिमाणपरिमित दधिमण्डसिन्धुसे परिवेष्टित है।

शाकद्वीपमें विश्वविदित उदयाचल है। वहाँ ब्राह्मण वङ्ग, क्षत्रिय मागध, वैश्य मानस और शूद्र मन्दग नामसे जाने जाते हैं। वहाँ ब्राह्मणादि वर्णोंद्वारा सर्वेश्वर श्रीहरिकी **सूय**रूपसे उपासना की जाती है। यह तुल्यपरिमाणपरिमित दुग्धसिन्धुसे परिवेष्टित है।

शाकद्वीपके मङ्क, मशक, मानस, मन्दग - नामक जनपदमें न कोई राजा है, न दण्ड है और न दण्ड देनेवाला है। वहाँके निवासी धर्मके ज्ञाता हैं और स्वधर्मपालनके ही प्रभावसे एक - दूसरेकी रक्षा करते हैं। -

"न तत्र राजा राजेन्द्र न दण्डो न च दाण्डिकः।
स्वधर्मेणैव धर्मज्ञास्ते रक्षन्ति परस्परम्।।"
(महाभारत - भीष्मपर्व ११.३९)

पुष्करद्वीपमें विश्वविदित मानसोत्तर नामक वर्ष पर्वत है। वहाँके मनुष्यादिकी आयु दस हजार वर्ष है। यह नदियोंसे विहीन द्वीप है। वर्णाश्रमादि भेदरहित इस द्वीपमें वैर और वेदनाविहीन नर, देव और दैत्यादि निवास करते हैं। यहाँ दिव्य वटवृक्ष और दिव्य पुष्कर (पर्वतविशेष) पर ब्रह्माजी निवास करते हैं। यहाँ सर्वेश्वर श्रीहरिकी **ब्रह्मा**रूपसे उपासना की जाती है। यह तुल्यपरिमाणपरिमित शुद्धोदकसिन्धुसे परिवेष्टित है।

लोकालोकपर्वत - पौराणिक परिमाणपरिपाटीके अनुसार समस्त भूगोल पचास करोड़ योजन परिमित है। इसका चतुर्थांश लोकालोकपर्वत है। यह त्रिलोकीके बाहर त्रिभुवनसीमाके रूपमें चतुर्दिक् व्याप्त है। सूर्य,चन्द्र, ध्रुवादिकी किरणोंको त्रिभुवनपरिधिमें सन्निहित रखनेके लिए

ऊर्ध्व और अधोभागमें स्थित परमेश्वरकी यह अद्भुत कृति है। सौरादि आलोक और अनालोकका विभाजक पर्वत लोकालोक कहा जाता है। इस पर्वतके अन्तर्वर्ती भूभागके अनुरूप ही अलोक प्रदेशका भूभाग है। लोकालोक पर्वतपर सम्पूर्ण लोकोंकी स्थितिके लिए लोकगरु स्वयम्भू श्रीब्रह्माजीने चारों दिशाओंमें ऋषभ, पुष्करचूड, वामन और अपराजित नामक चार गजराज नियुक्त किया है। लोकालोकपर्वतपर दिग्गजों, ब्रह्मा, इन्द्रादि लोकपालोंके सर्वविध उत्कर्षके लिए सर्वेश्वर चतुर्भुज श्रीहरि स्वयं ही निवास करते हैं।

भूर्लोक और स्वर्लोक ब्रह्माण्डके द्विदलतुल्य परिमाण हैं। इन दोनोंका सन्धिस्थान अन्तरिक्षसंज्ञक भुवर्लोक है।

जम्बूद्वीपकी अपेक्षा अन्य द्वीप दिव्यताकी दृष्टिसे स्वर्गोपम होनेसे उत्कृष्ट माने गये हैं। तथापि सुदर्शनसंज्ञक जम्बूद्वीपान्तर्गत सुमेरुपर्वत और उससे संलग्न भारतवर्ष ब्रह्मा, शिव और इन्द्रादिका यज्ञस्थल है। सप्तर्षियोंकी तपोभूमिके रूपमें इसीकी प्रसिद्धि है। श्रीपरशुराम, मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम, लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, करुणामूर्ति द्विजकुलभूषण यज्ञशोधक श्रीबुद्ध और युगप्रवर्तक श्रीकल्किकी भी अवतारभूमि यही मान्य है। उक्त हेतुओंसे भारत कर्मभूमि, यज्ञभूमि, तपोभूमि ही नहीं, अपितु वैराग्य और मोक्षभूमि भी सिद्ध है। अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी,काञ्ची, अवन्तिका, द्वारकादि मोक्षपुरियोंसे यह व्याप्त है। अभिप्राय यह है कि लौकिक और पारलौकिक उत्कर्षरूप अभ्युदययोग्य निसर्गसिद्ध सामग्री तथा निःश्रेयसप्रद वैराग्ययोग्य भूमि होनेके कारण भारतवर्षका भौगोलिक धरातलपर उत्कर्ष सिद्ध है। अतएव यह देवदुर्लभ अवतारभूमि है।

भारतके राजाधिराज धर्मरक्षक अश्वपति - जैसे महानुभावोंका यह पावन उद्घोष रहा है कि -

''न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।।''
(छान्दोग्योपनिषत् ५.११.५)

''मेरे जनपदमें कोई चोर नहीं है, न कदर्य (अनुदार) ही है, न मद्य पीनेवाला है, न अग्निहोत्रमें अधिकृत कोई अनाहिताग्नि (अग्निहोत्र न

करनेवाला) ही है। जब मेरे राज्यमें कोई स्वेच्छाचारी पुरुष नहीं है, तब निज शीलको दूषित करानेवाली कोई स्वेच्छाचारिणी स्त्री हो ही कैसे सकती है ?"

"न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नायज्वा मामकान्तरमाविशः।।"
"न मे राष्ट्रे विधवा ब्रह्मबन्धु-
र्न ब्राह्मणः कितवो नोत चोरः।
अयाज्ययाजी न च पापकर्मा
न मे भयं विद्यते राक्षसेभ्यः।।"
(महाभारत - शान्तिपर्व ७७. ८,२६)

वनमें तप और स्वाध्यायमें संलग्न केकयराजने अपहरणकर्त्ता राक्षससे कहा - " मेरे राज्यमें एक भी चोर, कंजूस, शराबी और अग्निहोत्र तथा यज्ञका त्याग करनेवाला नहीं है, फिर भी तुम्हारा मेरे शरीरमें प्रवेश कैसे हो गया ?"

"मेरे राज्यमें कोई स्त्री विधवा नहीं है तथा कोई भी ब्राह्मण अधम, धूर्त, चोर, अनधिकारियोंका यज्ञ करानेवाला और पापाचारी नहीं है, इस लिए मुझे राक्षसोंसे तनिक भी भय नहीं है।।"

"गोब्राह्मणेभ्यो यज्ञेभ्यो नित्यं स्वस्त्ययनं मम।
आशासते जना राष्ट्रे मामकान्तरमाविशः।।"
"कृपणानाथवृद्धानां दुर्बलातुरयोषिताम्।
संविभक्तास्मि सर्वेषां मामकान्तरमाविशः।।"
(महाभारत - शान्तिपर्व ७७. २८,१८)

"मेरे राज्यमें रहनेवाले गौओं, ब्राह्मणों तथा यज्ञोंके लिए सदा मङ्गलकामना करते रहते हैं, फिर भी तुम मेरे अन्दर घुस आये ?।।"

"दीन, अनाथ, वृद्ध, दुर्बल, रोगी और स्त्री - इन सबको मैं अन्न, वस्त्र, औषध आदि आवश्यक वस्तुएँ देता रहता हूँ, तथापि तुम मेरे शरीरमें कैसे प्रविष्ट हो गये ?"

जम्बूद्वीपान्तर्गत कर्मभूमि भारतवर्षका उत्कर्ष ख्यापित करते हुए कहा गया है -

''गायन्ति देवा: किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारत भूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूय: पुरुषा: सुरत्वात्।।''
''कर्माण्यसङ्कल्पित तत्फलानि
सन्यस्य विष्णौ परमात्मभूते।
अवाप्य तां कर्ममहीमनन्ते
तस्मिँल्लयं येत्वमला: प्रयान्ति।।''
(विष्णुपुराण २.३.२४,२५)

''देवगण भी निरन्तर यही गान करते हैं कि - जिन्होंने स्वर्ग और अपवर्गके मार्गभूत भारतवर्षमें जन्म लिया है, वे पुरुष हम देवताओंकी अपेक्षा भी अधिक धन्य हैं।।''

''जो इस कर्मभूमिमें जन्म लेकर अपने फलाकाङ्क्षासे रहित कर्मोंको परमात्मस्वरूप श्रीविष्णुभगवान्‌को अर्पण करनेसे निर्मल होकर उन अनन्तमें ही लीन हो जाते हैं, वे धन्य हैं।।''

इस सन्दर्भमें हस्तिनापुरसे जब मम जीवनधनसर्वस्व श्रीकृष्ण द्वारका प्रस्थान करने लगे, उस समय उनमें अनुरक्त पुरकी कुलीन रमणियोंकी सर्वश्रुतिमनोहर सूक्ति आत्मसात् करने योग्य है। -

''स वै किलायं पुरुष: पुरातनो
य एक आसीदविशेष आत्मनि।
अग्रे गुणेभ्यो जगदात्मनीश्वरे
निमीलितात्मन्निशिसुप्तशक्तिषु ।।
स एव भूयो निजवीर्यचोदितां
स्वजीवमायां प्रकृतिं सिसृक्षतीम्।
अनामरूपात्मनि रूपनामनी
विधित्समानोऽनुससार शास्त्रकृत्।।
स वा अयं यत्पदमत्र सूरयो
जितेन्द्रिया निर्जितमातरिश्वन:।

पश्यन्ति भक्त्युत्कलितामलात्मना
नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुमर्हति।।"
(श्रीमद्भागवत १.१०.२१ - २३)

"सखियो! ये वे ही सनातन पुरुष हैं, जो प्रलयके समय भी अपने अद्वितीय निर्विशेष स्वरूपमें स्थित रहते हैं। उस समय महदादि अवान्तरशक्तियोंके सहित सृष्टिमूला त्रिगुणमयी मायाशक्ति भी महेश्वरस्वरूप इनमें सन्निहित हो जाती है। जगदात्मा ईश्वरमें जीव भी लीन हो जाते हैं।। महासर्गके प्रारम्भमें इन्होंने ही अपने नामरूपरहित स्वरूपमें नामरूपके निर्माणकी इच्छा की। इन्होंने निज अंशसदृश जीवोंको विमोहित करनेवाली कालशक्तिसे प्रेरित सृष्टिसंरचनामें प्रवृत्त अपनी प्रकृतिका अनुसरण करते हुए निज श्वासस्वरूप श्रुतिरूप शास्त्रको आदिकवि ब्रह्माजीको निज सङ्कल्पयोगसे प्रदान किया।।"

"जिस सनातन पदका दर्शन इस जीवनमें जितेन्द्रिय प्राणसंयमी विचारकुशल मनीषी भक्तिरसभावित उत्फुल्ल विशुद्ध अन्तःकरणमें किया करते हैं,निस्सन्देह ये श्रीकृष्ण साक्षात् वही हैं। इनकी आराधना, उपासना और तीव्र भक्तिके द्वारा ही चित्तसत्त्वकी विशुद्धि सम्भव है।।"

"स वा अयं सख्यनुगीतसत्कथो
वेदेषु गुह्येषु च गुह्यवादिभिः।
स एक ईशो जगदात्मलीलया
सृजत्यवत्यत्ति न तत्र सज्जते।।"

"यदा ह्यधर्मेण तमोधियो नृपा
जीवन्ति तत्रैष हि सत्त्वतः किल।
धत्ते भगं सत्यमृतं दयां यशो
भवाय रूपाणि दधद्युगे युगे।।"
(श्रीमद्भागवत १.१०.२४ - २५)

"हे सखि! वास्तवमें ये वही एक जगदात्मा जगदीश्वर हैं जो सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और संहृतिलीलाका सम्पादन करते हुए भी उसमें समासक्त नहीं होते, जिनकी सुन्दर लीलाओंका गायन वेदोंमें तथा अन्य

गोपनीय शास्त्रोंमें व्यासादि रहस्यवादी ऋषियोंने किया है।।"

''जब तामसी बुद्धिवाले राजा अधर्मपूर्वक जीवन - यापन करते हैं, तब ये ही सत्त्वगुणको स्वीकार कर ऐश्वर्य, सत्य, ऋत, दया और यश प्रकट करते हैं और जगत् के कल्याणके लिए युग - युगमें अनेकों अवतार धारण करते हैं।।"

''अहो अलं श्लाघ्यतमं यदोः कुल-
महो अलं पुण्यतमं मधोर्वनम्।
यदेष पुंसामृषभः श्रियः पतिः
स्वजन्मना चङ्क्रमणेन चाञ्चति।।"

''अहो बत स्वर्यशसस्तिरस्करी
कुशस्थली पुण्ययशस्करी भुवः।
पश्यन्ति नित्यं यदनुग्रहेषितं
स्मितावलोकं स्वपतिं स्म यत्प्रजाः।।"

(श्रीमद्भागवत १.१०.२६ - २७)

''अहो ! यह यदुवंश परम प्रशंसनीय है; क्योंकि श्रीपति पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने जन्म ग्रहण करके इस वंशको सम्मानित किया है। यह पवित्र मधुवन (व्रजमण्डल) भी अत्यन्त धन्य है, जिसे इन्होंने अपने शैशव एवं किशोरावस्थामें विहरण कर सुशोभित किया है।।"

''अद्भुत हर्षका विषय है कि द्वारकाने स्वर्गके यशका तिरस्कार करके पृथ्वीके पवित्र यशको बढ़ा दिया है। क्यों न हो, स्वयं श्रीकृष्ण जहाँकी प्रजाको बड़े प्रेमसे मन्द - मन्द मुसकराते हुए कृपादृष्टिसे देखते हैं तथा वहाँकी प्रजा अपने स्वामी श्रीकृष्णचन्द्रको निरन्तर अद्भुत चाव - भावसे निहारती रहती है।।"

''नूनं व्रतस्नानहुतादिनेश्वरः
समर्चितो ह्यस्य गृहीतपाणिभिः।
पिबन्ति याः सख्यधरामृतं मुहु-
र्व्रजस्त्रियः सम्मुमुहुर्यदाशयाः।।"

(श्रीमद्भागवत १.१०.२८)

''सखि! जिनका इन्होंने पाणिग्रहण किया है, उन स्त्रियोंने अवश्य ही व्रत, स्नान, हवनादिके द्वारा इन परमात्माकी आराधना की होगी; क्योंकि वे बार - बार इनकी उस अधरसुधाका पान करती हैं, जिसके स्मरणमात्रसे ही व्रजकी स्त्रियाँ आनन्दसे मूर्च्छित हो जाया करती थीं।।''

परम भागवत श्रीभीष्मजीके शब्दोंमें -

''चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च।
हूयते च पुनर्द्वाभ्यां तस्मै होमात्मने नमः।।''
(श्रीमहाभारत - शान्तिपर्व ४७.४४)

''जो **आश्रवय** -चार, **अस्तु वौषट्** -चार, **यज** - दो, **ये यजामहे** - पाँच और **वषट्** - दो -इन सत्रह अक्षरोंवाले मन्त्रोंसे जिन्हें हविष्य अर्पण किया जाता है, उन होमस्वरूप परमेश्वरको नमस्कार है।।''

''यः सुपर्णा यजुर्नाम च्छन्दोगात्रस्त्रिवृच्छिराः।
रथन्तरं बृहत् साम तस्मै स्तोत्रात्मने नमः।।''
(श्रीमहाभारत - शान्तिपर्व ४७.४५)

''जो **यजुः** - नाम धारण करनेवाले वेदस्वरूप पुरुष हैं, गायत्री आदि **छन्द** - जिनके हाथ, पैर आदि अवयव हैं, **यज्ञ** - ही जिनका मस्तक है तथा **रथन्तर** और **बृहत्** - नामक **साम** - जिनकी सान्त्वनाभरी वाणी है, उन स्तोत्रस्वरूप भगवान् को नमस्कार है।। ''

''सारथ्यमर्जुनस्याजौ कुर्वन् गीतामृतं ददौ।
लोकत्रयोपकाराय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः।।''
(श्रीमहाभारत - शान्तिपर्व ४७.दा.)

''जिन्होंने अर्जुनका सारथ्य करते समय तीनों लोकोंके उपकारके लिए गीतामृत प्रदान किया था, उन ब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्णको नमस्कार है।।''

''तद् यस्य नाभ्यां सम्भूतं यस्मिन् विश्वं प्रतिष्ठितम्।
पुष्करे पुष्कराक्षस्य तस्मै पद्मात्मने नमः।।''
(श्रीमहाभारत - शान्तिपर्व ४७. ५९)

''जिसपर यह विश्व टिका हुआ है, वह ब्रह्माण्डकमल जिन पुण्डरीकाक्ष भगवान् की नाभिसे प्रकट हुआ है, उन पद्मस्वरूप परमेश्वरको प्रणाम है।।''

''यस्मिन् सर्वं यत: सर्वं य: सर्वे सर्वतश्च य:।
यश्च सर्वमयो नित्यं तस्मै सर्वात्मने नम:।।
(श्रीमहाभारत - शान्तिपर्व ४७. ५९)

''जिसमें सब है, जिससे सबका उद्भव है, जो सर्वरूप हैं, जो सर्वव्यापक हैं, जो सर्वमय सत्स्वरूप हैं, उन सर्वात्माको सदा ही नमस्कार है।।''

''अतसीपुष्पसंकाशं पीतवाससमच्युतम्।
ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते भयम्।।''
(श्रीमहाभारत - शान्तिपर्व ४७. ९१)

''जिनकी कान्ति अलसीके पुष्पकी तरह साँवली है, श्रीविग्रहपर पीताम्बर सुशोभित है, जो अपने स्वरूप , स्वभाव और प्रभावसे कभी च्युत नहीं होते, उन भगवान् गोविन्दको जो नमस्कार करते हैं, उन्हें कभी भय नहीं होता।।''

''एकोऽपि कृष्णस्य कृत: प्रणामो
दशाश्वमेधावभृथेन तुल्य:।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म
कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय।।''

''कृष्णव्रता: कृष्णमनुस्मरन्तो
रात्रौ च कृष्णं पुनरुत्थिता ये।
ते कृष्णदेहा: प्रविशन्ति कृष्ण-
माज्यं यथा मन्त्रहुतं हुताशे।।''
(श्रीमहाभारत - शान्तिपर्व ४७. ९२,९३)

''भगवान् श्रीकृष्णको एकवार भी प्रणाम किया जाय तो वह दस अश्वमेध यज्ञोंके अन्तमें किये गये स्नानके समान फल देनेवाला होता है। तथापि दस अश्वमेध करनेवालेका पुन: इस संसारमें जन्म होता है, परन्तु

श्रीकृष्णको प्रणाम करनेवाला पुनर्भवको प्राप्त नहीं होता।।"

"जिन्होंने श्रीकृष्णभजनका ही व्रत ले रक्खा है, जो श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए ही रातको सोते हैं और उन्हींका स्मरण करते हुए सबेरे उठते हैं, वे श्रीकृष्णस्वरूप होकर उनमें इस तरह मिल जाते हैं, जैसे मन्त्र पढ़ कर हवन किया हुआ घृत अग्निमें मिल जाता है।।"

"नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः।।"
(श्रीमहाभारत - शान्तिपर्व ४७.९५)

"जो ब्राह्मणोंके प्रिय , पृथिवीके धारक गौ और ब्राह्मणोंके हितकारी हैं, जो सम्पूर्ण जगत् के हितस्वरूप हितकर हैं, उन सर्वाकर्षक सदानन्दस्वरूप भगवान् गोविन्दको नमस्कार है, नमस्कार है।।"

प्रार्थना

यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै
विवादसंवादभुवो भवन्ति।
कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहं
तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भूम्ने।। १।।
(श्रीमद्भागवत ६.४.३१)

"जिनकी शक्तियाँ वादी, प्रतिवादियोंके विवाद और संवाद (ऐक्यमत) का विषय होती हैं और उन्हें बार - बार मोहमें डाल दिया करती हैं। जो अनन्त अप्राकृत कल्याण गुणगणोंसे सम्पन्न और स्वयं अनन्त हैं। उन्हें नमस्कार है।।"

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदताम्
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी।। २।।
(श्रीमद्भागवत ५. १८.९)

"हे प्रभो ! विश्वका कल्याण हो। दुष्ट दुष्टतासे विनिर्मुक्त होकर प्रमुदित हो। सब एक -दूसरेका हित चिन्तन करें। हमारा मन शुभमार्गमें प्रवृत्त हो तथा हमारी बुद्धि निष्कामभावसे स्वप्रकाश सदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीहरिमें निमग्न हो।। "

श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य
ऋग्वेदीय पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठ
शङ्कराचार्यमार्ग, पुरी, ७५२००१ (उड़ीसा)
भारत

श्रीहरि:

श्रीगणेशाय नम:

पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठ - स्वस्तिप्रकाशनसंस्थानसे प्रकाशित पुस्तकें

१.शुकसुधा
२.श्वेताश्वतरोपनिषत् अध्याय १-३ (व्याख्यासहित)
३.श्वेताश्वतरोपनिषत् अध्याय ३-६ (व्याख्यासहित)
४.नासदीयसूक्तम् (सायणभाष्यानुवादसहित)
५.कुन्तीस्तुति:(विस्तृत व्याख्यासहित)
६श्रीराधारस और रसिकशेखर
७श्रीराधारससुधा और श्रीकृष्णरसवैभव
८.पीठपरिषद् और उसके अन्तर्गत आदित्यवाहिनी और आनन्दवाहिनी
९.सुखमयजीवनका सनातनसिद्धान्त
१०.विश्वशान्तिका सनातनसिद्धान्त
११.स्वस्तिकगणित
१२.सार्वभौमसनातनसिद्धान्त
१३.सारार्थदीपिका
१४.शारीरकस्वाराज्यसिद्धिसारसमाख्या
१५.सनातनधर्मियोंका रसरहस्यमय बहुदेवादिवाद
१६.जीवनज्योति
१७.शिवावतार भगवत्पाद आदि शङ्कराचार्य
१८.गीताजयन्ती और भीष्मोत्क्रान्ति
१९.अनमोलवचन
२०.नीति और अध्यात्म
२१.नीतिसूक्तम्
२२.आयुर्विज्ञान
२३.अध्यात्मरहस्य
२४.श्रीमद्भगवद्गीतामें योगचतुष्टय

२५.सनातनसन्देश
२६.व्रतस्वरूपविमर्श
२७.बालजागरण
२८.श्रीमद्भगवद्गीतामें कर्मतत्त्व
२९.श्रीमद्भगवद्गीतामें पुरुषार्थ चतुष्टय
३०.विभीषणशरणागति (प्रेसमें)
३१.श्रीजगन्नाथ और उनकी रथयात्रा
३२.व्यूहरचना
३३.अङ्कपदीयम्
३४.गणितदर्शन
३५.पावनसन्देश
३६.दिग्दर्शन
३७.राष्ट्ररक्षा
३८.परमार्थसार
३९.दिग्दर्शन
४०.करुणा, कठोरता और कर्त्तव्यनिष्ठा
41.The Eternal Principles Of Happy Life
४२.श्रीमद्भगवद्गीतामें ज्ञानतत्त्व
४३.क्रान्तिबिन्दु
४४.दिव्यानुभूति (प्रथम भाग) (प्रेसमें)
४५.अवतारमीमांसा
४६.विचित्र सम्वाद
४७.वैदिकार्षगणित (प्रथम भाग)
४८.प्रवचनपीयूष
49.Neeti And Adhyatma (English)
५०.नमो नमः श्रीगुरुपादुकाभ्याम्
५१.गणितचिन्तामणि
५२.चतुराम्नाय - चतुष्पीठ

53.The Philosophy of Mathematics
54. Ganita Chintamani
55.Nature of Numbers
56..Bhagawan Shree Krisna
५७.श्रीगीतासुधा
५८. श्रीराधासुधा
५९.जगदीश्वर, जीव और जगत्
६०.नीतिचालीसा
६१.श्रीजगन्नाथाष्टकम्
६२.श्रीसागर - गङ्गा - आरती
६३.वैदिकार्षगणित (द्वितीय भाग)
६४.पूर्वाम्नाय श्रीगोवर्द्धनमठपरिचय
६५.वैदिक बौद्धदर्शन (वैदिकार्षप्रक्रियाप्रकाश)
६६.शून्यैकसिद्धि और द्व्यङ्कपद्धति
६७.सनातनधर्म
68.Sanatan - Dharma
69.Bhagawan Shree Ram
70.Swastik - Ganit

विशेष - ५७से ७०तक प्रेसमें